कुरुक्षेत्र

अक्तूबर 1998 मूल्य : दस रुपये

गरीबी पर प्रहार कितना असरदार

यदि मेरा स्वप्न पूरा हो जाए तो भारत के सात लाख गांवों में से हर एक गांव समृद्ध प्रजातंत्र बन जाएगा। उस प्रजातंत्र का कोई व्यक्ति अनपढ़ न रहेगा, काम के अभाव में कोई बेकार न रहेगा, बल्कि किसी-न-किसी कमाऊ धंधे में लगा रहेगा। हर एक आदमी को पौष्टिक चीजें खाने को, रहने को अच्छे हवादार मकान, और तन ढकने को काफी खादी मिलेगी, और हर एक देहाती को सफाई और आरोग्य के नियम मालूम होंगे और वह उनका पालन किया करेगा।

—हरिजन सेवक, 30-7-38

कुरुक्षेत्र

ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय
की प्रमुख मासिक पत्रिका

वर्ष 43 | अंक 12 | आश्विन-कार्तिक 1920 | अक्तूबर 1998

कार्यकारी संपादक
बलदेव सिंह मदान

उप संपादक
रजनी

संपादकीय पता
संपादक, 'कुरुक्षेत्र', ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय,
कृषि भवन, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 3015014
फैक्स : 011-3015014
तार : ग्राम विकास

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
डी.एन. गांधी

विज्ञापन प्रबंधक
के.एस. जगन्नाथ राव

आवरण सज्जा
एम.एम. मलिक

'कुरुक्षेत्र' की एजेन्सी लेने, ग्राहक बनने और अंक न मिलने की शिकायत, विज्ञापन और प्रसार संख्या प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 से करें। विज्ञापनों के लिए विज्ञापन प्रबंधक, प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक-4, लेवल-7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110 066 से संपर्क करें। फोन : 6105590

मूल्य एक प्रति : पांच रुपये
यह अंक : दस रुपये
वार्षिक शुल्क : 50 रुपये
द्विवार्षिक : 95 रुपये
त्रिवार्षिक : 135 रुपये

हिन्दी के अतिरिक्त अंग्रेजी में भी प्रकाशित इस पत्रिका में प्रकाशित लेखों में अभिव्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं तथा यह आवश्यक नहीं कि सरकारी दृष्टिकोण भी वही हो।

इस अंक में

- गरीबी निवारण की योजनाएं : एक चौराहे पर — कृपा शंकर — 3
- गांवों का विकास हो, तो कैसे — राज किशोर — 7
- ग्रामीण निर्धनता से मुक्ति कैसे संभव है — प्रदीप पंत — 9
- गांवों में गरीबी दूर करने के प्रयास : बुनियादी बदलाव जरूरी है — भारत डोगरा — 13
- गरीबी उन्मूलन के टेढ़े-मेढ़े, संकरे रास्ते — जितेन्द्र गुप्त — 15
- ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन : इतना धीमा क्यों — प्रयाग दास हजेला — 19
- मजदूरी रोजगार कार्यक्रम और स्वरोजगार कार्यक्रम — सतपाल चौहान — 23
- ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की हकीकत — डा. महीपाल — 31
- ग्रामीण गरीबी : समस्या और समाधान — डा. गौरीशंकर राजहंस — 35
- लक्ष्य पूरा उद्देश्य अधूरा की विडंबना से मुक्ति जरूरी — उपेन्द्र प्रसाद — 39
- भारत में ग्रामीण विकास : आजादी के पचास वर्षों के बाद — अमर कुमार सिंह — 41
- समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम : गरीबी पर सीधा प्रहार — सुन्दर लाल कुकरेजा — 45
- हमारी योजनाएं, हमारे गांव और हमारा काम — प्रोफेसर के.डी. गंगराडे — 49
- ग्रामीण विकास तथा गरीबी निवारण : सार्थक सोच के आयाम — कमल नयन काबरा — 53
- कितनी कारगर हैं ग्रामीण विकास योजनाएं — सत्यवीर त्यागी — 57

"स्वाधीनता जब अपने सर्वोत्तम रूप में प्रकट होती है तब उसके साथ-साथ सर्वोच्च रूप में अनुशासन और विनम्रता भी रहती है।"

— महात्मा गांधी

महात्मा गांधी की 129 वीं जयंती
2 अक्तूबर, 1998

डीएवीपी 98/350

गरीबी निवारण की योजनाएं : एक चौराहे पर

कृपा शंकर*

इस देश में गरीबी की समस्या को कभी भी गंभीरता से नहीं लिया गया। गांवों में असंख्य लोग बहुत ही छेटी जोत के किसान हैं जिनका अकेले खेती के बल पर जीवन-यापन नहीं हो सकता। राष्ट्रीय सैम्पल सर्वे 1992 के अनुसार ग्रामीण अंचल में 11 प्रतिशत परिवार पूर्ण रूप से भूमिहीन हैं और 31 प्रतिशत ऐसे परिवार हैं जिनके पास 0.2 हेक्टेयर से कम भूमि है अर्थात 42 प्रतिशत परिवार या तो भूमिहीन हैं या उनके पास 0.2 हेक्टेयर से कम भूमि है। 1961-62 में ऐसे परिवारों का कुल प्रतिशत 38 था। इससे यह स्पष्ट है कि गांवों में भूमिहीनता बढ़ रही है। इस अवधि में परिवार की औसत जोत दो हेक्टेयर से घटकर एक हेक्टेयर हो गई है। प्रति व्यक्ति भूमि 1951 के मुकाबले में एक-तिहाई रह गई है।

देश की जनसंख्या प्रतिवर्ष 1.7 करोड़ के हिसाब से बढ़ रही है और कृषि भूमि में अब कोई वृद्धि नहीं हो रही है। संगठित क्षेत्र में रोजगार में मात्र चार लाख की वार्षिक वृद्धि हो रही है जबकि पूंजी निवेश का बहुत बड़ा भाग संगठित क्षेत्र में ही जा रहा है।

औद्योगीकरण से बेकारी और गरीबी अल्प समय में दूर नहीं हो सकती। यूरोप और अमरीका में भी व्यापक बेकारी है परंतु चूंकि उन देशों ने उपनिवेशों का शोषण करके बहुत अधिक धन बटोर लिया है और यह प्रक्रिया आज भी जारी है इसलिए बेरोजगार व्यक्तियों को गुजारे के लिए व्यापक भत्ता दिया जाता है जो भारत जैसे निर्धन देश में संभव नहीं है।

गांधी जी ने औद्योगीकरण का इसीलिए विरोध किया था कि इस प्रक्रिया में कितनी ही सफलता क्यों न आ जाए परंतु गांव में सबसे गरीब को इससे कुछ नहीं मिलने वाला है क्योंकि उसकी बेरोजगारी ज्यों की त्यों बनी रहेगी। इसी कारण वे चाहते थे कि मशीन से कपड़ा न बने वरन गांव में ही चर्खे से सूत काता जाए और हाथ से बुनाई की जाए ताकि लोगों को गांव में ही खाली समय के लिए काम मिल जाए। गांधी जी यह भी चाहते थे कि ग्राम पूर्णरूप से सत्ता-संपन्न हो और वे स्वयं जंगल, जल और जमीन जैसे प्राकृतिक साधनों का विकास और संवर्धन करें जिसमें किसी नौकरशाही की कोई आवश्यकता न हो।

हाथ से कताई-बुनाई की बात को व्यावहारिक न मान कर त्यागा जा सकता है लेकिन उनका ग्राम स्वराज का पक्ष बहुत प्रबल था। यदि गांव को विकास के लिए पूरी सत्ता और साधन दे दिए जाएं तो सभी ग्रामवासी अपने गांव के सर्वांगीण विकास में रुचि लेंगे और सक्रिय योगदान करेंगे क्योंकि अपना भविष्य संवारने की जिम्मेदारी उन्हीं पर रहेगी।

उनकी प्राथमिकता यह होगी कि वर्षा के पानी की एक बूंद को भी बाहर न जाने दिया जाए और गांव में ही अवरोध बांध, बंधियां, तालाब और अन्य जलाशयों का निर्माण करके सारा पानी गांव में ही रोक लिया जाए जिसे बाद में सिंचाई के लिए उपयोग में लाया जाए।

जल-ग्रहण के इस कार्यक्रम में तथा उसके रख-रखाव में बहुत-से लोगों को गांव में ही बराबर काम मिलता रहेगा और पलायन को रोका जा सकेगा। सिंचाई की यह सबसे सरल और कम खर्चीली योजना है। इसी प्रकार बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण करके उस तमाम भूमि का सार्थक उपयोग किया जा सकता है जो बेकार पड़ी है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि 1950-51 में बाग और वृक्षों से आच्छादित क्षेत्रफल दो करोड़ हेक्टेयर था जो अब घट कर मात्र 30 लाख हेक्टेयर है। एक हेक्टेयर वृक्षारोपण और उसके रख-रखाव के लिए एक व्यक्ति के हिसाब से एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों को स्थायी रूप से अकेले इसी कार्य में रोजगार मिल सकता है।

जल-ग्रहण एवं वृक्षारोपण का कार्य यदि युद्ध-स्तर पर किया जाता तो पिछले 50 वर्षों में गांवों का नक्शा बदल जाता। परंतु प्रश्न यह है कि क्या इन कार्यों को करने के लिए आदमी नहीं थे क्योंकि इन कार्यों में पूंजी की नहीं के बराबर आवश्यकता है। केवल हाथ में फावड़ा होना चाहिए। जाहिर है योजना बनाने वालों की सोच का सवाल है। उनकी समझ थी कि यदि सामुदायिक विकास के नाम पर गांवों में अधिकारियों की एक फौज उतार दी जाए तो गांवों का रूपांतरण हो जाएगा। पूरा देश ब्लाकों में बांट दिया गया जिनके बजट में केवल वेतन वितरण ही होता है; जल-ग्रहण, वृक्षारोपण या ऐसे अन्य तमाम कार्यों के लिए ब्लाक के बजट में कोई प्रावधान नहीं होता।

गरीबी दूर करने के लिए गरीबों को काम मिलना चाहिए। या तो उपरोक्त प्रकार के कार्यों में उन्हें काम मिले या भूमि का पुनर्वितरण इतने व्यापक पैमाने पर किया जाए कि कृषि पर आश्रित सभी लोगों को जहां तक संभव हो सके, जीवन यापन के लिए समुचित भूमि मिल जाए।

* निदेशक, आर्थिक अनुसंधान केन्द्र, इलाहाबाद

विकास के मार्ग के लिए बहुधा जापान का उदाहरण दिया जाता है। वहां पर चालीस के दशक के अंत में जब अमरीकी आधिपत्य था, बड़े-बड़े भू-स्वामी जो नगरों में रहते थे अथवा गांव में रहते हुए खेती नहीं करते थे, उनकी जमीन सरकार ने अधिग्रहण कर ली और बाद में उसे भूमिहीन किसानों को आसान किश्तों में बेच दिया। हदबंदी की सीमा अधिकतर जगहों में 7.5 एकड़ रखी गई। लगभग 50 लाख एकड़ भूमि इस प्रकार से गरीबों में वितरित की गई। अपने देश में भूमि वितरण जापान के मुकाबले नहीं के बराबर हुआ है जबकि गरीब आदमी जमीन चाहता है। सत्तर के दशक में ग्रामीण समाज की भूमि का अपेक्षाकृत बेहतर वितरण हुआ लेकिन ऐसी भूमि का बड़ा भाग पहले से ही प्रभावशाली लोगों ने अपने कब्जे में कर लिया था। हदबंदी कानून के अंतर्गत अधिक भूमि नहीं निकल सकी, क्योंकि यह सीमा काफी ऊंची रखी गई थी। ऐसे भू-स्वामियों ने कचहरियों में मुकदमे दायर करके व्यापक पैमाने पर रुकावटें पैदा कर दीं।

जब न तो जमीन दी गई और न कोई काम के अवसर बढ़ाए गए तो गरीबी की समस्या घनीभूत होती गई। गरीबी दूर करने की दिशा में एक कार्यक्रम समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम चलाया गया। इसके अंतर्गत बैंकों द्वारा चयनित लोगों को ऋण दिया जाता है जिसमें अत्यंत निर्धन परिवारों को आधी छूट दी जाती है तथा अन्य व्यक्तियों को एक-तिहाई छूट मिलती है। सबसे गरीब आदमी मजदूरी कर सकता है। वह परंपरागत मजदूरी पर ही आश्रित रहा है। अब यदि उसे कुछ रुपया दुकान खोलने के लिए दिया जाए तो अनुभव न होने के कारण दुकान चलाना कठिन भी हो सकता है। फिर भ्रष्टाचार का जो बोलबाला है उसमें पूरी धनराशि लाभार्थी को नहीं मिलती। कहीं-कहीं तो छूट के पूरे पैसों की बांट लेने की व्यवस्था कर ली जाती है। सामान भी किसी विशेष दुकान से ही खरीदना पड़ता है जो अक्सर रद्दी सामान दे देते हैं। ऐसे गरीब आदमी जब दुकान खोलते हैं तो दूसरे गरीब लोग बहुधा उधार सामान लेते हैं जिन्हें वह इन्कार नहीं कर सकता। इस प्रकार रुपया फंस जाता है और कुछ ही दिन में दुकान टूट जाती है। इस कार्यक्रम में दुधारू भैंसें दी गईं जो तभी तक रखी जाती हैं जब तक वे दूध देती हैं। दूध देना बंद होने के बाद भैंस को वही खिला सकता है जिसके पास खेती से पर्याप्त चारा हो। इसके अभाव में बाद में ज्यादातर लोग भैंस बेच देते हैं या किसी ऐसे रिश्तेदार को दे देते हैं जिसके पास कुछ खेत होता है।

बड़े पैमाने पर वृक्षारोपण करके उस तमाम भूमि का सार्थक उपयोग किया जा सकता है जो बेकार पड़ी है। यह इसलिए भी आवश्यक है कि 1950-51 में बाग और वृक्षों से आच्छादित क्षेत्रफल दो करोड़ हेक्टेयर था जो अब घट कर मात्र 30 लाख हेक्टेयर है। एक हेक्टेयर वृक्षारोपण और उसके रख-रखाव के लिए एक व्यक्ति के हिसाब से एक करोड़ से अधिक व्यक्तियों को स्थायी रूप से अकेले इसी कार्य में रोजगार मिल सकता है।

लेखक ने 1996-97 में मिर्जापुर (उत्तर प्रदेश) के एक जनजाति (कोल) बाहुल ब्लाक हलिया में जो मध्य प्रदेश के सरहद पर है, एक त्वरित सर्वेक्षण किया जो 10 ग्रामों तक सीमित था। ब्लाक का यह भाग मिर्जापुर से 70 किलोमीटर की दूरी पर है तथा एक पहाड़ी नदी पर पुल न होने के कारण वर्षा के तीन महीनों में जनपद तथा ब्लाक से पूर्ण रूप से कट जाता है। यहां घोर गरीबी और अशिक्षा है। इस कारण समन्वित ग्रामीण विकास योजना के अंतर्गत गांव के दलालों ने अधिकारियों से मिलकर खुली लूट मचा रखी है। यहां कुछ बड़े भू-स्वामी हैं जिनके यहां गरीब मजदूर बंधुआ की स्थिति में हैं। ऐसे लोग थोड़ा रुपया देकर तथाकथित लाभार्थी से अंगूठा लगवा लेते हैं और यह आश्वासन देते हैं कि आगे कुछ नहीं होगा। अगर कोई बात होगी तो वे देख लेंगे। जिस गरीब आदमी को दिन भर काम करने पर मात्र तीन किलो अनाज मिलता हो और दैनिक खर्च के लिए दुकानदार का कर्जदार हो, यदि उसके जेब में कोई तीन-चार सौ रुपया डाल दे तो वह अस्वीकार नहीं करेगा। इसी आधार पर 10,000 रुपया का ऋण लाभार्थी के नाम पर निकाल लिया जाता है जिसका उपयोग भूस्वामी या दलाल अपने काम में करते हैं। एक गांव में एक केस मिला जहां एक भूस्वामी ने इसी प्रकार कई मजदूरों के नाम पर ऋण निकाल कर ट्रैक्टर खरीद लिया है। कइयों ने पंपसेट निकलवाए हैं। अब जब वसूली आना प्रारंभ हुआ तो लोग गाड़ी का हार्न सुनते ही घर छोड़ कर भाग जाते। दलाल या मालिक यही आश्वासन देते कि कर्जा माफ होने वाला है। कभी-कभी वसूली करने वालों को कुछ पैसा देकर अपनी जान छुड़ाते हैं। इस अति पिछड़े ब्लाक के दृष्टांत को लेकर यह नहीं कहा जा सकता कि ऐसा सभी जगह हो रहा है। इसी सर्वेक्षण के गांवों में 18 ऐसे कोल परिवार मिले जिन्होंने पंपसेट निकलवाया है और पहले की अपेक्षा अच्छी खेती कर रहे हैं। प्रतिशत के रूप में ऐसे परिवार जो वास्तव में लाभान्वित हुए हैं, 10 से भी कम हैं। अगर यह योजना ग्राम समाज को सौंप दी जाए और उसी के माध्यम से लाभार्थियों का पूरी सभा में चुनाव किया जाए और ग्राम समाज ही नियंत्रण रखे तो इस मद में व्यय होने वाले 700 करोड़ रुपये का सदुपयोग हो सकेगा।

इंदिरा आवास योजना पर अब लगभग 2,000 करोड़ रुपया प्रतिवर्ष व्यय किया जा रहा है। इसके अंतर्गत चयनित परिवार को 20,000 रुपया एक कमरे का मकान बनवाने के लिए मिलता है। ब्लाक के अधिकारी ही लाभार्थी को चुनते हैं, यद्यपि कहने के लिए ग्राम पंचायत इसके लिए अधिकृत की गई है। नकद रुपया लाभार्थी को नहीं दिया जाता—ईंट, पत्थर की पटिया, सीमेंट आदि की व्यवस्था ब्लाक के कर्मचारी ही करते हैं, जिसमें ग्राम प्रधान सम्मिलित रहता है।

उपरोक्त सर्वेक्षण में यह पाया गया कि केवल उन गांवों में जो ब्लाक हेडक्वार्टर से अपेक्षाकृत कम दूरी पर थे जैसे पोखडौर, कटाई, बरुआ आदि में अच्छे आवास बने हुए थे जिनमें लोग रहते भी थे लेकिन ज्यों-ज्यों ग्रामों की दूरी बढ़ती गई जैसे तीता, पटपरा, बड़ौहां आदि में आवास आधे-अधूरे बने थे और उनमें कोई रहता भी नहीं था। प्रारंभ में ईंट गिरा दिया गया, दीवार भी किसी तरह आधा तीहा चुन दी गई, लेकिन छत नहीं पड़ी। एक-दो बरसात के बाद वहां कुछ भी साबुत नहीं बचेगा। एक ग्राम में प्रधान ने दुकान खोलने के उद्देश्य से सड़क पर इस योजना के अंतर्गत

भवन बनवा रखा है। इस योजना को भी जब तक पूर्ण रूप से ग्रामवासियों के नियंत्रण में नहीं दिया जाएगा, कोई सुधार की आशा नहीं की जा सकती। यह बात भी कम समझ में आती है कि ग्राम के निर्धनतम लोग जो वर्ष के कुछ दिनों को छोड़कर आधा पेट भोजन करते हैं, अगर पक्की कोठरी में रहने लगेंगे तो क्या उनकी भूख मिट जाएगी? अगर काम के अवसर बढ़ते हैं तो ऐसे लोग अपने बच्चों को स्कूल भेज सकते हैं, भरपेट भोजन कर सकते हैं और मकान भी बनवा सकते हैं। प्रथम प्राथमिकता मजदूरी के अवसर बढ़ाने की है। इस कार्यक्रम से किसी निर्धन व्यक्ति की आय में कोई वृद्धि नहीं हो सकती। दूसरी बात जो समझ में नहीं आती कि क्या यह आवश्यक था कि ईंट और सीमेंट का ही मकान हो। कच्चा मकान भी उपयोगी हो सकता था और इसमें ज्यादा श्रम की भी आवश्यकता पड़ती। लेकिन गांवों में जो नव धनाढ्य की जाति पैदा हुई है उसमें ईंट-भट्टों के मालिक प्रमुख हैं। सीमेंट, रासायनिक खाद, कीटनाशक दवाइयों की ग्राम स्तर पर एजेंसी भी इन्हीं लोगों के हाथ में है। इनका राजनीतिक वर्चस्व पिछले वर्षों में बढ़ा है। यदि कच्चे मकान बनते तो इस वर्ग को लाभ नहीं होता। एक यह भी प्रश्न है कि जब ऐसे मकानों की मरम्मत की आवश्यकता पड़ेगी तो क्या ऐसे निर्धन परिवार मरम्मत के लिए आवश्यक सामग्री बाजार से खरीदने में सक्षम होंगे।

रोजगार सृजन की दिशा में जवाहर रोजगार योजना सबसे महत्वपूर्ण है और वर्तमान समय में इस योजना पर प्रतिवर्ष 2,000 करोड़ रुपये से अधिक व्यय हो रहा है। सबसे बड़ी विशेषता यह है कि धनराशि सीधे पंचायतों को दी जाती है तथा किस काम पर यह धनराशि लगाई जाएगी, यह निर्णय भी ग्रामवासी ही करेंगे। भारत सरकार के ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय द्वारा इस संबंध में जो मैनुअल तैयार किया गया है, वह इतना पूर्ण है कि यदि उस पर वास्तव में अमल हो तो यह योजना रोजगार सृजन की दिशा में एक आदर्श योजना होगी। परंतु प्रश्न यह है कि वर्तमान परिवेश में यह कहां तक संभव है। मैनुअल की धारा-18 के अनुसार धनराशि निकालने का अधिकार अकेले ग्राम प्रधान को नहीं होगा वरन पंचायत इसके लिए ग्राम के अन्य निवासी का चयन करेगी जिनके संयुक्त हस्ताक्षर से पैसा निकाला जा सकेगा। जो कार्य करना है, उसे पूरे ग्राम समाज की सभा में निश्चित किया जाएगा और हर माह कार्य की प्रगति और व्यय का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया जाएगा। इस प्रकार इसका संचालन पूर्ण रूप से ग्रामीण समाज के नियंत्रण में होगा। मैनुअल में प्रावधान है कि ग्राम पंचायत को जितना रुपया प्राप्त हुआ है, गांव की किसी प्रमुख दीवार पर लिख दिया जाए ताकि सभी ग्रामवासी यह जान सकें कि ग्राम पंचायत को कुल कितनी धनराशि मिली है। दीवार पर यह भी लिखा जाएगा कि किस काम के लिए धन स्वीकृत हुआ है तथा कार्य के दौरान यह भी दर्शाना होगा कि किस कार्य में अमुक तिथि तक कितना व्यय हुआ है।

इन पंक्तियों के लेखक ने 1991-92 में इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) के 5 ब्लाकों के 39 ग्राम पंचायतों में जवाहर रोजगार योजना का सर्वेक्षण किया था (देखिए इकानामिक एंड पोलिटिकल वीकली, जुलाई 16, 1994)। इस सर्वेक्षण में सबसे विचित्र यह बात प्रकाश में आई कि किसी भी ग्राम में मैनुअल के किसी भी निर्देश का पालन नहीं होता। किसी भी ग्राम में कोई व्यक्ति यह नहीं जानता था कि कितनी धनराशि स्वीकृत हुई है। कहीं भी किसी दीवाल पर ऐसा कुछ भी नहीं लिखा गया था। सबसे विचित्र बात यह थी कि पंचायत के प्रधान के अतिरिक्त जिस दूसरे व्यक्ति को चुन कर पैसा बैंक से निकालने का प्रावधान है, उसका कहीं भी पालन नहीं हुआ था। इसके विपरीत धारा 18 का स्पष्ट उल्लंघन करते हुए ग्राम पंचायत अधिकारी प्रधान के साथ मिलकर बैंक खाते का संचालन करता था। चूंकि आडिट की व्यवस्था भी वही करता था, इसलिए प्रधान सदैव उसके दबाव में रहता था। अक्सर सारे कागजात भी वही रखता था। यह आम शिकायत पाई गई कि ग्राम पंचायत अधिकारी स्वीकृत धनराशि का 10 से 20 प्रतिशत यह कह कर निकलवा लेता था कि यह उच्च अधिकारियों को देना है और अगर यह धनराशि नहीं दी गई तो कार्य पूरा होने को वे कभी भी प्रमाणित नहीं करेंगे। प्रधानों की भी यह मानसिकता बनती थी कि जब बड़े अधिकारी खा रहे हैं तो उनका भाग दे देने के बाद उन्हें भी खाने की स्वतंत्रता होगी। यह पाया गया कि आधी धनराशि ही मुश्किल से व्यय होती थी। जिन पंचायत प्रधानों ने ग्राम पंचायत अधिकारियों की मनमानी का विरोध किया, उनके राह में बहुत कठिनाइयां पैदा कर दी जाती थीं।

यह बात भी कम समझ में आती है कि ग्राम के निर्धनतम लोग जो वर्ष के कुछ दिनों को छोड़कर आधा पेट भोजन करते हैं, अगर पक्की कोठरी में रहने लगेंगे तो क्या उनकी भूख मिट जाएगी? अगर काम के अवसर बढ़ते हैं तो ऐसे लोग अपने बच्चों को स्कूल भेज सकते हैं, भरपेट भोजन कर सकते हैं और मकान भी बनवा सकते हैं। प्रथम प्राथमिकता मजदूरी के अवसर बढ़ाने की है।

यहां यह भी ज्ञातव्य हो कि जवाहर रोजगार योजना की कुल स्वीकृत धनराशि का 20 प्रतिशत जिला ग्रामीण विकास अधिकरण को इस बात के लिए मिलता है कि वह इस योजना की देख-रेख करे और सारा काम मैनुअल की शर्तों के मुताबिक हो। अधिकरण को कुल धनराशि का पांचवां भाग मिलने का कोई औचित्य नहीं है क्योंकि प्राधिकरण में अधिकतर सरकारी कर्मचारी होते हैं जिनका वेतन और यात्रा-व्यय सरकार वहन करती है। यदि जिलाधिकारी और अन्य अधिकारी मैनुअल के अनुसार कार्य करें तो भ्रष्टाचार की कोई गुंजाइश न रहे। लेकिन स्थिति यह थी कि जब लेखक ने कुछ ब्लाकों पर इस बात की सूची लेनी चाही कि किस ग्राम पंचायत को कितनी धनराशि मिली है तो यह सूची देने से इंकार कर दिया गया। वास्तविकता यह है कि यदि सर्वसाधारण को यह मालूम हो जाए कि अमुक ग्राम को कितनी धनराशि मिली है तो खाने-पीने वालों का पत्ता ही कट जाएगा। प्रधान को भी अपनी मर्यादा के लिए काम कराके दिखाना पड़ेगा। लेकिन जब धनराशि के बारे में कुछ जानकारी नहीं रहती तो प्रधान से यह पूछने का कोई साहस भी नहीं कर सकता। यदि कोई पूछे तो प्रधान यह उत्तर देता है कि जितने पैसे मिले थे उसका उसने पूरा काम करा दिया है।

मैनुअल में इस बात का भी प्रावधान है कि प्रधान एवं पंचायत के सदस्यों को इस दिशा में सघन ट्रेनिंग दी जाए और इसके लिए प्रत्येक जिला ग्रामीण विकास प्राधिकरण को 50,000 रुपयों का प्रावधान किया गया है। परंतु ऐसा प्रतीत होता है कि सभी चीज गोपनीय रखने का प्रयास

है। किसी भी प्रधान को मैनुअल की एक प्रति भी नहीं दी गई थी। ब्लाकों पर भी यह उपलब्ध नहीं था।

मैनुअल में उन कार्यों की सूची दी गई है जिस पर जवाहर योजना में कार्य होना है। इस सूची में जल और भूमि संरक्षण को पहला स्थान दिया गया है। वृक्षारोपण का भी नंबर दो पर स्थान है। संपर्क-मार्ग सूची में काफी नीचे हैं परंतु सभी ग्रामों में अधिकतर संपर्क-मार्ग पर ही धनराशि व्यय की गई। कई ग्रामों में प्रधानों ने अपने घर तक सड़क बनवाने में विशेष रुचि ली।

लेखक ने हलिया ब्लाक में 1996-97 में जिस सर्वेक्षण का जिक्र ऊपर किया है उसमें जवाहर रोजगार योजना के बारे में भी जानकारी एकत्र की गई थी। इस योजना में क्या काम हुआ—इसकी जानकारी कुछ गांवों में बिल्कुल नहीं मिल सकी क्योंकि वास्तव में वहां कोई काम नहीं हुआ था। कुछ गांवों में 6-7 दिन के लिए संपर्क मार्ग पर कार्य हुआ था। ग्रामवासियों का यह कहना था कि प्रारंभ के वर्षों में कुछ काम हुआ था लेकिन जब यह ज्ञात हुआ कि शासन की ओर से कोई सख्ती नहीं हो रही है तो भ्रष्टाचार और बढ़ गया है।

भारत सरकार प्रतिवर्ष 10,000 करोड़ रुपया ग्रामीण रोजगार योजनाओं और गरीबी निवारण पर व्यय कर रही है। राज्य सरकारें भी इतना ही व्यय करती हैं। इसका जितना प्रभाव पड़ना चाहिए, नहीं पड़ रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि ग्रामीण जनता की इन योजनाओं में कोई भागीदारी नहीं है। अब जब संविधान में 73वां संशोधन हो गया है, जिसके अनुसार गांव स्तर पर विकास के सभी कार्यों की पूरी जिम्मेदारी और वित्तीय संसाधन ग्राम पंचायत को दिए जाने चाहिए, इस दिशा में विलंब नहीं होना चाहिए। सच पूछा जाए तो जिस दिन ग्राम पंचायतों को, जो गांधी जी के स्वप्न के अनुसार भारतीय सभ्यता का ठोस आधार थीं, स्वशासन का अधिकार मिलेगा, उसी दिन भारतवर्ष की दूसरी आजादी का श्रीगणेश होगा। ❑

कुरुक्षेत्र की विज्ञापन की दरें

	सामान्य दर			चार विज्ञापनों के अनुबंध की दर		
	अंग्रेजी		हिन्दी	अंग्रेजी		हिन्दी
	रंगीन	श्वेत/श्याम	श्वेत/श्याम	रंगीन	श्वेत/श्याम	श्वेत/श्याम
	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये	रुपये
पूरा पृष्ठ	—	2,500	1,600	—	2,300	1,300
आधा पृष्ठ	—	1,500	900	—	1,300	700
पिछला आवरण पृष्ठ	9,400	5,000	2,300	8,800	4,800	1,900
अन्दर का आवरण पृष्ठ	6,300	3,400	2,100	5,600	3,100	1,800

विज्ञापन संबंधी अन्य जानकारी

पूरा आकार	:	21 से.मी. × 28 से.मी.
मुद्रित क्षेत्र	:	17 से.मी. × 24 से.मी.
मुद्रण प्रणाली	:	आफसेट प्रेस
स्वीकार्य विज्ञापन सामग्री	:	केवल आर्टवर्क/आर्टपुल/पोजिटिव
विज्ञापन स्वीकार करने की अंतिम तिथि	:	60 दिन पहले
डिमांड ड्राफ्ट देय हो	:	निदेशक प्रकाशन विभाग के नाम नई दिल्ली में देय
पता जिस पर विज्ञापन भेजा जाए	:	श्री के.एस. जगन्नाथ राव, विज्ञापन एवं प्रसार प्रबंधक प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक 4, लेवल 7, आर.के. पुरम, नई दिल्ली-110066 टेलीफोन : 6105590 (कार्यालय) 6116185 (निवास) फैक्स : 6175516, 6193012, 3386879

गांवों का विकास हो, तो कैसे?

राज किशोर*

यह सचमुच एक मार्मिक सवाल है कि गांवों के विकास के लिए, और गांवों में रहने वालों को रोजगार देने के लिए इतनी योजनाएं बनाई गईं तथा अब भी बनाई और चलाई जा रही हैं, फिर भी ऐसा लगता है जैसे गरीबी और निरक्षरता पांव तुड़ाकर हमारे गांवों में बैठी हुई हैं। यह तो नहीं कहा जा सकता कि स्वतंत्रता के 51 वर्षों में भारतीय गांवों का स्वरूप बदला ही नहीं। बहुत-से गांव अब समृद्ध हो चुके हैं तथा वहां शहरों की आधुनिकतम सुविधाएं उपलब्ध हैं। लेकिन यह ज्यादातर उन इलाकों में हुआ है, जहां हरित क्रांति ने खेती को पूंजीवादी चरित्र दे दिया है या जहां किसी-न-किसी रूप में विदेश में कमाया हुआ पैसा आता है। निश्चय ही इस दायरे में भारत के आधे गांव भी नहीं आते। इस तरह ग्रामीण गरीबी की समस्या गंभीर रूप से बनी हुई है। जैसे-जैसे संपन्न तबकों की जीवन शैली में नई-नई चीजें जुड़ती जाती हैं, गांवों की यह दीनता और भी भयावह तथा असह्य प्रतीत होती है। क्या हम अपने इन दीन-हीन और दुर्दशाग्रस्त गांवों के साथ ही इक्कीसवीं सदी में जाएंगे?

गांवों की बदहाली दूर करने वाली योजनाओं की विफलता के बारे में राजीव गांधी ने लगभग डेढ़ दशक पहले जो आप्त वाक्य कहा था; वह अभी भी देश के अवचेतन में गूंज रहा है। बहुत क्षोभ के साथ उन्होंने अपनी यह पीड़ा सार्वजनिक रूप से व्यक्त की थी कि केंद्र से सहायता का जो एक रुपया चलता है, उसमें से सिर्फ 15 पैसे ही जरूरतमंद लोगों तक पहुंच पाते हैं। शेष पैसे बिचौलिये हड़प जाते हैं। तब से भ्रष्टाचार की समस्या बढ़ी ही है और प्रशासनिक कुशलता में भी कोई इजाफा नहीं हुआ है। यह जरूर हुआ है कि इस बीच गांवों में काम करने वाले स्वयंसेवी संगठनों का एक पूरा तंत्र उभर आया है। उम्मीद की गई थी कि यह तंत्र नौकरशाही की जटिलताओं और खर्चीलेपन से मुक्त होगा तथा कम लागत पर जरूरतमंद लोगों को ज्यादा मदद पहुंचाएगा। लेकिन ज्यादातर स्वयंसेवी संगठनों की कार्य-पद्धति ऐसी है कि संगठन के पदाधिकारियों पर ही ढेर सारा पैसा खर्च हो जाता है और वास्तविक कामों पर कम पैसा खर्च होता है। यानी अफसरशाही की बुराइयां गई नहीं हैं—सिर्फ उनका रूप बदल गया है। अफसरशाही में फिर भी यह गनीमत होती है कि वह सरकार के प्रति और एक हद तक जनता के प्रति जिम्मेदार होती है, लेकिन स्वयंसेवी संगठनों की ऐसी कोई लोकतांत्रिक जिम्मेदारी नहीं है और न ही कोई प्रतिबद्धता है। फिर इन संगठनों की एक सीमा यह भी है कि ये एकायामी होते हैं। यदि परियोजना साक्षरता बढ़ाने की है, तो स्वास्थ्य या किसी अन्य समस्या पर ध्यान नहीं दिया जाएगा—भले ही किसी खास वक्त वह समस्या निरक्षरता से भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो। अत: इस बात की उम्मीद भी कम ही नजर आती है कि गांवों के विकास का कार्यक्रम इस समानांतर चैनल द्वारा संपन्न किया जा सकता है।

ऐसा प्रतीत होता है कि गांवों का विकास न होने की समस्या को ठीक तरह से चिह्नित ही नहीं किया गया है। इसके मूल में दृष्टिकोण की एक विकृति है। विकृति यह है कि सरकार अपने को दाता समझती है तथा गांव के समस्याग्रस्त लोगों को याचक। यह एक सामंतवादी दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण प्रधानमंत्री से चल कर गांव के पटवारी या सरपंच तक चला आता है। इसका सार यह है कि लोगों को सहायता की जरूरत है और हमें उनकी सहायता करनी चाहिए। इस प्रक्रिया में सहायता पाना जरूरतमंद आदमी का अधिकार नहीं बन पाता। यह सहायता देने वाले पर निर्भर होता है कि वह किसको कितनी सहायता देता है। इसके कारण भाई-भतीजावाद और भ्रष्टाचार को प्रश्रय मिलता है। जब लोगों को याचक माना जाएगा, तो उनके साथ याचक जैसा ही व्यवहार होगा। यानी थोड़ा-बहुत उन्हें दे दो और शेष अपने लिए रख लो। यह जिम्मेदारी स्थानीय प्रशासन पर कभी आरोपित नहीं की जाती कि वह एक निश्चित अवधि में अपने क्षेत्र की सभी समस्याएं दूर करके दिखाए। विकास की या रोजगार देने की फुटकर योजनाएं चलाई जाती हैं, जिससे कुछ क्षेत्रों में तो काम होता रहता है, लेकिन समग्र विकास की कोई रूपरेखा नहीं बन पाती। और फिर, एक मूलत: गरीब अर्थव्यवस्था में सरकारी सहायता देने की भी एक सीमा है। कुछ लोगों को गरीबी की रेखा से ऊपर लाने का कार्यक्रम इस तरह की सहायता योजनाओं से बनाया जा सकता है, लेकिन गरीबी की व्यापक समस्या का निदान नहीं किया जा सकता। यह तो व्यवस्था के समग्र ढांचे में ही खोजा जा सकता है।

विकृति यह है कि सरकार अपने को दाता समझती है तथा गांव के समस्याग्रस्त लोगों को याचक। यह एक सामंतवादी दृष्टिकोण है। यह दृष्टिकोण प्रधानमंत्री से चल कर गांव के पटवारी या सरपंच तक चला आता है। इसका सार यह है कि लोगों को सहायता की जरूरत है और हमें उनकी सहायता करनी चाहिए। इस प्रक्रिया में सहायता पाना जरूरतमंद आदमी का अधिकार नहीं बन पाता। यह सहायता देने वाले पर निर्भर होता है कि वह किसको कितनी सहायता देता है।

सवाल यह उठता है कि लोग गरीब क्यों हैं? हमें भूलना नहीं चाहिए कि

* वरिष्ठ पत्रकार और पंचायती राज अपडेट के सम्पादक

निरक्षरता, कुपोषण आदि की समस्याएं गरीबी से ही जुड़ी हुई हैं। कोई भी खुशहाल परिवार अपने बच्चों को निरक्षर बनाए रखना नहीं चाहेगा। जैसे-जैसे संपन्नता बढ़ती है, स्त्रियों की जीवन स्थितियों में भी परिवर्तन आता है। अत: जब तक गरीबी की समस्या से सफलतापूर्वक जूझा नहीं जाएगा, सहायता कार्यक्रम ऊंट के मुंह में जीरे के समान बने रहेंगे। साथ ही, यह भी साबित हो चुका है कि जवाहर रोजगार योजना जैसे कार्यक्रमों से लोगों की गरीबी दूर नहीं की जा सकती। सवाल लोगों को किसी भी तरह का रोजगार देने का नहीं है। सवाल यह है कि उन्हें ऐसा रोजगार मिलना चाहिए, जिससे वे आत्म सम्मान के साथ जी सकें। गरीबी को हम अक्सर जिस तरह परिभाषित करते हैं, उसमें यह सम्मान परिलक्षित नहीं होता। मान लिया जाता है कि रोटी, कपड़ा और मकान की न्यूनतम आवश्यकताओं को पूरा कर देने भर से आदमी गरीब नहीं रह जाएगा। यह न्यूनतमवाद गरीबी की वास्तविक समस्या से हमें मुठभेड़ नहीं करने देता। लक्ष्य यह होना चाहिए कि लोगों का जीवन स्तर क्रमश: अपने आप बढ़े, न कि उनकी कुछ खास जरूरतों को पूरा करने का काम संपन्न कर, उन्हें उनके हाल पर छोड़ दिया जाए।

स्पष्टत: व्यापक गरीबी की समस्या कृषि की उत्पादकता बढ़ाने और औद्योगीकरण की रफ्तार तेज करने से जुड़ी हुई है। कृषि क्रांति भारत के सभी गांवों में नहीं आ पाई है। यह हमारी योजनागत विफलता है। यदि भारतीय कृषि की उत्पादकता समग्र रूप से बढ़ती है, तो न केवल किसान खुशहाल हो सकेंगे, बल्कि कृषि मजदूरों को भी उचित मजदूरी दी जा सकेगी। लेकिन जैसे-जैसे कृषि का विकास होगा, रोजगार पैदा करने की उसकी क्षमता कम होती जाएगी। मशीनें आदमियों का काम करने लगेंगी। इसलिए कृषि के विकास के समानांतर ही उद्योग-धंधों का भी विकास करना होगा। वैसे कृषि की उत्पादकता बढ़ने पर औद्योगीकरण भी कुछ बढ़ता ही है, लेकिन यह काफी नहीं है। समस्या यह है कि ज्यादातर गांवों में या उनके आस-पास उद्योग-धंधे नहीं हैं। इसके विपरीत कुछ खास शहरों में औद्योगीकरण का संकेंद्रीकरण है। यह सच है कि स्थानीयकरण से उद्योगों को अनेक फायदे होते हैं। लेकिन हमें उद्योगों के फायदों के साथ-साथ श्रमिकों के फायदों के बारे में भी सोचना चाहिए। उचित तो यह है कि जहां पहले से ही काफी उद्योग लगे हुए हैं, वहां नई इकाइयां खोलने की अनुमति नहीं दी जानी चाहिए। जिन जिलों में उद्योग नहीं हैं, वहां नई औद्योगिक इकाइयां स्थापित करने के लिए विशेष प्रयास किए जाने चाहिए।

जैसे-जैसे कृषि का विकास होगा, रोजगार पैदा करने की उसकी क्षमता कम होती जाएगी। मशीनें आदमियों का काम करने लगेंगी। इसलिए कृषि के विकास के समानांतर ही उद्योग-धंधों का भी विकास करना होगा।

फिर भी औद्योगिक विकास की हमारी जो रफ्तार है, वह लोगों को शालीन रोजगार दिलाने में सक्षम नहीं है। आंकड़े तो यह भी कहते हैं कि औद्योगिक क्षेत्र की रोजगार पैदा करने की क्षमता भी कम होती जा रही है। इसलिए सबसे बड़ी चुनौती यह है कि औद्योगिक क्षेत्र का तीव्रतर विस्तार कैसे किया जाए। उदारीकरण पर बहुत भरोसा नहीं किया जा सकता। उदारीकरण के बाद जो विदेशी पूंजी आई है, उसका परिमाण बहुत सीमित है और यह पूंजी कुछ खास-खास उद्योगों में ही लगी है। अत: हमें देशी साधनों से ही औद्योगीकरण की साधना करनी होगी। इसके लिए जरूरी है कि सुख-सुविधाओं पर होने वाले खर्च पर तुरंत अंकुश लगाया जाए। अनुत्पादक व्यय और विलासिता पर होने वाले खर्च को खत्म करके ही पर्याप्त मात्रा में पूंजी संग्रह किया जा सकता है। साथ ही, इस पुरानी नीति को भी फिर से चलाना होगा कि जो चीजें कुटीर और लघु उद्योगों द्वारा बनाई जा सकती हैं; जैसे जूता, साबुन, नमक आदि; उनके उत्पादन और वितरण के क्षेत्र में बड़े उद्योगों को प्रवेश न करने दिया जाए।

ये सब इतनी सीधी-सादी बातें हैं कि इन्हें लिखते हुए संकोच होता है। कोई मामूली-सा अर्थशास्त्री भी यह सब सुझा सकता है। फिर भी चीजें बदल नहीं रही हैं, क्योंकि देश का राजनीतिक वर्ग उन्हें बदलना नहीं चाहता। वह एक ओर गरीबी और विषमता बढ़ाने वाली नीतियों पर चलता है और दूसरी ओर लोकतंत्र के दबाव से गरीबी दूर करने के कार्यक्रमों की घोषणा भी करता रहता है। स्पष्ट है कि व्यवस्था के भीतर एक गहरा कपट है। इस कपट के कारण ही सहायता कार्यक्रम न केवल आधे-अधूरे ढंग से बनाए जाते हैं, बल्कि उन पर अनमनेपन से अमल होता है। फिर गांवों का विकास हो, तो कैसे? सच तो यह है कि ग्रामीण विकास के विशेष कार्यक्रम सामान्य विकास के पूरक ही हो सकते हैं—उनका विकल्प नहीं। फिलहाल जो कुछ चल रहा है, वह विकास नहीं, उसकी खानापूर्ति है। खानापूर्ति से लोगों की समस्याओं का समाधान करने का स्वांग तो किया जा सकता है पर वास्तविक समाधान नहीं किया जा सकता। इसके लिए तो न्यूनतम जरूरत यह है कि हम गरीब आदमी को एक समस्या नहीं, बल्कि एक लोकतांत्रिक दायित्व मानें और तब तक अपने आप पर शर्म करते रहें जब तक देश का एक भी आदमी भूखा सोता है। जब तक पुरुष भिखारी हैं, स्त्रियां वेश्या और बच्चे मजदूर, तब तक हमें अपने आपको एक लोकतांत्रिक देश कहने का कोई हक नहीं है। इस लोकतांत्रिक ढांचे के भीतर जो सामंती नजरिया काम कर रहा है, उसके परिशमन के बगैर भारत के गांवों का कोई भविष्य दिखाई नहीं देता। ❑

गरीबी स्वयं अपमानजनक नहीं है, केवल उस गरीबी को छोड़कर जो आलस्य, व्यसन, फिजूल खर्ची या मूर्खता के कारण हुई।

—प्लूटार्क

ग्रामीण निर्धनता से मुक्ति कैसे संभव है

प्रदीप पंत*

आजादी की आधी शताब्दी बीत जाने के बावजूद भारत में अपेक्षित ग्रामीण विकास न हो पाने के कारण 36 प्रतिशत से अधिक लोगों के गरीबी की रेखा से नीचे की स्थिति में बने रहने के प्रश्न पर समय-समय पर बहसें होती रही हैं लेकिन कोई ठोस निष्कर्ष अभी तक नहीं निकल पाया है कि ग्राम विकास कैसे हो और गांवों में गरीबी की समस्या कैसे हल की जाए? गांवों की हालत सुधारने और गरीबों को स्तरीय जीवन व्यतीत करने में मदद देने के लिए सरकारी तौर पर तथा सरकार के अनुदान से स्वयंसेवी क्षेत्र द्वारा कार्यक्रम चलाने के लिए करोड़ों रुपये की मदद दी जाती रही है। इन दोनों प्रयासों से अलग पूर्णत: स्वैच्छिक स्तर पर भी छुटपुट कार्यक्रम चलाए गए हैं। गांवों में स्कूल, औषधालय, दक्षता विकास केन्द्र खोलने, आदिवासी अंचलों में जनजातीय लोगों के लिए अलग प्रकार के कार्यक्रम चलाने, हस्तशिल्प और हथकरघा विकास, तटीय क्षेत्रों में मत्स्य विकास आदि के कार्यक्रम आयोजित करने के साथ-साथ बड़े पैमाने पर राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम, ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम, काम के बदले अनाज कार्यक्रम आदि पर अमल किया गया। फिर भी गरीबों की स्थिति में कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं आया। इसका स्पष्ट मतलब है कि अब तक चलाए गए कार्यक्रम कोई खास कारगर नहीं रहे हैं।

ग्राम विकास की बहसों को अक्सर गांधी बनाम नेहरू के रूप में प्रस्तुत किया जाता है, मानो गांधी और नेहरू अलग-अलग राहों के राही हों और उनके ग्राम विकास के नमूने या 'माडल' एक-दूसरे से बिल्कुल पृथक हों। इस संदर्भ में प्रमाण के तौर पर अक्सर कहा जाता है कि गांधी गांवों को एक आत्मनिर्भर इकाई मानते थे, जबकि नेहरू के पश्चिमी ढंग की सोच में निर्धन ग्रामीण समाज के लिए कोई जगह ही नहीं थी। दरअसल यह गांधी और नेहरू दोनों की सोच की गलत व्याख्या है। यह सही है कि गांधी के आर्थिक चिंतन से नेहरू कई मामलों में असहमत थे। मसलन वह गांधी के ट्रस्टीशिप सिद्धांत को अवास्तविक मानते थे, क्योंकि उनका दृढ़ मत था कि कोई भी उद्योग-मालिक अपने उद्योग का ट्रस्टी बन जाने भर से अपने मालिकाना हक और श्रमिकों के शोषण की नीति से नहीं हट जाएगा। लेकिन इन वैचारिक मतभेदों का यह कतई मलतब नहीं है कि गांधी और नेहरू दो अलग-अलग ध्रुव थे। सच तो यह है कि नेहरू को भी ग्राम विकास और निर्धन ग्रामीणों की हालत सुधारने की उतनी ही चिंता थी जितनी गांधी को थी। इसीलिए प्रथम पंचवर्षीय योजना में उन्होंने कृषि और ग्राम विकास को सर्वोच्च प्राथमिकता दी और इन कार्यों के लिए सर्वाधिक धन का आबंटन किया। यदि हम गौर से देखें तो पाएंगे कि गांधी और नेहरू एक-दूसरे के पूरक थे। कहना न होगा कि गांधी गांव की एक आत्मनिर्भर यानी अपनी जरूरतें स्वयं पूरी कर लेने वाली इकाई के रूप में परिकल्पना करते थे। इस परिकल्पना का यह तात्पर्य नहीं था कि वे गांव को अपनी जरूरतें पूरी करने के लिए दूसरों पर निर्भर होने ही नहीं देना चाहते थे। अक्सर ऐसे ही संदर्भ में उनके 'स्वदेशी' के नारे को भी आधे-अधूरे ढंग से उद्धृत किया जाता है। जब गांधी स्वदेशी की बात कहते थे तो वे यही चाहते थे कि भारतवासी ज्यादा से ज्यादा आत्मनिर्भर रहें और चीजों का देश में ही उत्पादन हो, लेकिन गांधी ने यह भी कहा था कि बहुत जरूरी वस्तुएं यदि आपको बाहर से मंगानी पड़े तो उन्हें मंगाने में कोई हर्ज नहीं।

सच तो यह है कि हमारी समस्त समस्याओं का मूल कारण ही जनसंख्या विस्फोट है। अनुमान है कि देश की आबादी अब तक नब्बे करोड़ से एक अरब के बीच पहुंच चुकी है। चूंकि देश की 70 प्रतिशत से अधिक जनता गांवों में रहती है, इसलिए जनसंख्या विस्फोट का अधिकांश दुष्परिणाम ग्रामांचलों को ही अधिक भुगतना पड़ रहा है।

गांधी द्वारा गांवों को आत्मनिर्भर इकाई के रूप में देखने का मतलब यह नहीं था कि यदि गांवों में मकान बनाने के लिए सीमेंट की आवश्यकता

* लेखक और कथाकार

हो तो गांव वाले सीमेंट इसलिए न लाएं क्योंकि वह कहीं अन्यत्र से आएगा और नेहरू जब सीमेंट के बड़े कारखाने खड़े करने की बात करते थे तो उसका मतलब यह नहीं था कि वे गांवों की अनदेखी करके नगरों-महानगरों में बड़ी-बड़ी आलीशान इमारतें खड़ी करवाना चाहते थे। वस्तुत: इसका मतलब यह था कि ऐसा मूलभूत ढांचा खड़ा किया जाए जिससे सभी लोगों और सभी क्षेत्रों की बुनियादी आवश्यकताएं पूरी हो सकें, फिर चाहे वे शहरों के लोग हों या गांवों के और चाहे गृह-निर्माण की आवश्यकता हो या बांध बनाने आदि की। इस्पात, सीमेंट आदि के बड़े-बड़े कारखाने और संयंत्र लगाने की नेहरू की नीति को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए। इस्पात, सीमेंट, कोयला आदि ऐसी चीजें हैं जिनके आधार पर ही विकास किया जा सकता है। इस्पात से जहां बड़े-बड़े कल-कारखाने लगाए जा सकते हैं, वहीं वह किसान के हल, चाकू-छुरी, रेल की पटरी और सूई तक के उत्पादन के लिए जरूरी है। कोई गांव अलग इकाई रह कर इस्पात नहीं पैदा कर सकता और न इस्पात के बिना उसका काम चल सकता है। इसलिए गांधी की गांव को आत्मनिर्भर इकाई बनाने की परिकल्पना और नेहरू की बुनियादी ढांचागत सुविधाएं जुटाने के सोच में परस्पर संबंध है।

यद्यपि स्वाधीन भारत में ग्रामीण समाज की स्थिति में कोई बहुत बड़ा परिवर्तन नहीं आया, किंतु हम ऐसा भी नहीं कह सकते कि भारतीय ग्रामीण समाज आज भी 15 अगस्त 1947 से पूर्व की स्थिति में है, जब गांवों के लोग बेहद बदहाली की हालत में थे। निश्चय ही स्थिति वैसी नहीं है, 36 प्रतिशत से अधिक लोगों के गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बिताने के बावजूद स्थिति वैसी नहीं है और स्थिति वैसी न होने का एक कारण है—बुनियादी ढांचागत सुविधाओं से ग्रामीणों को मिलने वाला लाभ। कारण और भी हैं, जैसे खेती की बेहतर सुविधाएं, बेहतर बीज, सिंचाई की पहले से ज्यादा अच्छी सुविधा आदि। स्थिति और भी बेहतर हो सकती थी यदि जनसंख्या का व्यापक विस्फोट न होता। सच तो यह है कि हमारी समस्त समस्याओं का मूल कारण ही जनसंख्या विस्फोट है। अनुमान है कि देश की आबादी अब तक नब्बे करोड़ से एक अरब के बीच पहुंच चुकी है। चूंकि देश की 70 प्रतिशत से अधिक जनता गांवों में रहती है, इसलिए जनसंख्या विस्फोट का अधिकांश दुष्परिणाम ग्रामांचलों को ही अधिक भुगतना पड़ रहा है। गांव आमतौर पर अशिक्षा के अंधकार में डूबे हुए हैं। ग्रामवासियों में इसी कारण कम आबादी और छोटे परिवार की महत्ता का अहसास नहीं है। यदि अधिक बच्चे होने से मां के स्वास्थ्य पर पड़ने वाले प्रतिकूल प्रभाव आदि की चर्चा फिलहाल न करें तो भी इस सच्चाई से कौन इंकार कर सकता है कि जनसंख्या-वृद्धि विकास के सभी लाभों को नगण्य बना देती है। ग्रामवासियों को यह गलतफहमी है कि जितने ज्यादा बच्चे होंगे, काम में हाथ बंटाने वाले उतने ही ज्यादा हाथ होंगे। कहना न होगा कि अन्य कारणों के अलावा गांवों में जो भूमि वाले अनेक किसान धीरे-धीरे भूमिहीन किसानों में बदल गए, उसका एक कारण जनसंख्या विस्फोट ही है, क्योंकि परिवार में अधिक बच्चे होने से पुश्तैनी जमीन भाइयों के बीच बंटती चली गई। परिणामस्वरूप पहले किसी परिवार की भूमि छोटी-छोटी जोतों में परिवर्तित हुई और फिर छोटी जोतें अलाभकारी होने से किसानों ने गांवों के सम्पन्न वर्गों को अपनी जमीनें बेचीं और वे भूमिहीन श्रमिक में बदल गए और धीरे-धीरे गरीबी की रेखा के नीचे आते चले गए।

इस नई स्थिति से पहले भी ग्रामीण क्षेत्र भूमि के असमान वितरण की समस्या से जूझता रहा है। इस असमान वितरण की सदियों से चली आई परंपरा को समाप्त करने के लिए स्वाधीनता के बाद विभिन्न राज्यों में जमींदारी उन्मूलन के कदम उठाए गए। लेकिन ये कदम ज्यादातर कागजी कार्रवाई बन कर रह गए। नेतृत्व में राजनीतिक संकल्प-शक्ति का अभाव इसका मुख्य कारण रहा। हां, पश्चिम बंगाल जरूर इसका अपवाद है जहां मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के नेतृत्व वाले मोर्चे ने सत्तारूढ़ होते ही भूमि का असमान वितरण समाप्त किया और जमीन जोतने वालों को जमीन का मालिक बनाया। यदि पिछले दो दशक से भी अधिक समय से पश्चिम बंगाल में यह मोर्चा सत्ता की कुर्सी पर है तो इसका एक प्रमुख कारण उसकी यह प्रगतिशील कार्रवाई है। दूसरी ओर ऐसी प्रगतिशील कार्रवाई के अभाव के कारण अनेक राज्यों के ग्रामांचलों में भूमिहीन किसानों में असंतोष बढ़ा है और बदलते समय के साथ उनमें आती चेतना के फलस्वरूप उनके और सम्पन्न भूस्वामियों के बीच टकराव की घटनाएं आम बात हो गई हैं। बिहार में अक्सर सम्पन्न भूस्वामियों की प्राइवेट सेनाओं और संगठित भूमिहीनों के बीच जो हिंसक मुठभेड़ें होती हैं, उन्हें इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

इसी से जुड़ा हुआ यह तथ्य भी है कि सरकारी सहायता कार्यक्रमों और योजनाओं का अधिकांश लाभ गांवों का सम्पन्न वर्ग उठा ले जाता है। तात्पर्य यह है कि जिनके लिए यह सहायता आती है, कार्यक्रम और योजनाएं बनती हैं, वे इनके लाभों से वंचित रह जाते हैं। दरअसल गौर से देखा जाए तो सरकारी सहायता और योजनाओं का स्वरूप ही ऐसा होता है कि ग्रामीण गरीब उनका फायदा नहीं उठा पाता। बैंकों से कर्ज को उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। इन कर्जों की प्राप्ति के लिए ऐसी शर्तें लगाई जाती हैं और इतनी कागजी कार्रवाइयां करनी पड़ती हैं, जिन्हें पूरा कर पाना गरीबों के बस का नहीं होता। दूसरे, योजनाओं, सहायता और कार्यक्रमों से जुड़ा भ्रष्टाचार इन्हें सही अर्थों में सफल नहीं होने देता। भ्रष्टाचार के चलते नलकूप कागजों पर लग जाते हैं, कागजों पर ही कच्ची सड़कें पक्की सड़कों में बदल जाती हैं, कागजों पर ही गांवों के बेसहारा लोगों को ऋण बंट जाते हैं। भ्रष्टाचार की यह गाथा आज भारतीय जीवन और व्यवस्था का अविभाज्य अंग बन चुकी है। इस भ्रष्टाचार के चलते और अपने दबदबे के फलस्वरूप सम्पन्न भूस्वामी ही अधिक लाभान्वित होते हैं। कहने को गांवों में पंचायती राज की स्थापना की दिशा में सशक्त कदम उठाए गए हैं जहां महिलाएं भी पंच और सरपंच हैं या हो सकती हैं, लेकिन पंचायत से लेकर ब्लाक विकास कार्यालय तक सब जगह सम्पन्न भू-मालिकों की ही चलती है। गांवों में तैनात सरकारी अधिकारियों से लेकर कलैक्टर तक सभी पैसे वालों की ही सुनते हैं और गरीब बेचारे गुहार लगाते रह जाते हैं। हां, कुछ जगह अपवाद नजर आएं तो बात अलग है।

गांवों में खेती के अलावा आमदनी का दूसरा मुख्य स्रोत है—कुटीर और हस्तशिल्प उद्योग। दुर्भाग्यवश इन उद्योगों की हालत बहुत अच्छी

नहीं है। एक तो इन उद्योगों के उत्पादनों की लागत इतनी अधिक आती है कि इनकी तुलना में कारखानों से उत्पादित वस्तुएं सस्ती पड़ती हैं, दूसरे इन कुटीर और हस्तशिल्प उद्योगों के माल की बिक्री के लिए उत्पादकों के सामने सीधी विपणन व्यवस्था का आमतौर पर अभाव है। इसका लाभ बिचौलिए उठाते हैं। वे मनमानी कीमत पर चीजें खरीदते हैं। इसलिए गांवों में जिस तरह धीरे-धीरे परंपरागत कुटीर और हस्तशिल्प उद्योग नष्ट होते चले जा रहे हैं, उसके कई कारणों में से प्रमुख कारण हैं—कुटीर और हस्तशिल्प उद्योग द्वारा मशीन से प्रतिस्पर्धा न कर पाना, विपणन की सीधी व्यवस्था का अभाव और बिचौलियों की अनियंत्रित लूटपाट। लेकिन ऐसा लगता नहीं कि इस स्थिति से मुक्ति संभव है। यदि सरकारें जगह-जगह खरीद-फरोख्त केन्द्र बना भी दें तो उनका सफल हो पाना संदिग्ध है, क्योंकि सरकार के किसी भी कार्य और कार्यक्रम के साथ इतने नियम, उपनियम और लालफीताशाही के रंग-ढंग आ जुड़ते हैं कि सद्इच्छा से आरंभ किया कोई कार्य और कार्यक्रम भी अंतत: विफल हो जाता है।

ग्रामीण गरीबी के संदर्भ में ऊपर जिन कारणों की चर्चा की गई है, उनका कुल निष्कर्ष है—गांवों में रोजगार या रोजी-रोटी कमाने के अवसरों का अभाव। इस अभाव के चलते ही तो दूर-दूर के ग्रामांचलों से लोग झुग्गी-झोपड़ियों और उनके बीच अभावों के बावजूद नगरों और महानगरों की ओर भागे चले आते हैं। तमाम असुविधाओं के बावजूद नगरों और महानगरों में आने पर लोगों को एक तो बहुत अधिक शोषण का शिकार नहीं होना पड़ता, दूसरे उन्हें कम-से-कम दो वक्त की रोटी कमाने की सुविधा तो हासिल हो ही जाती है। यही कारण है कि गांवों के भूमिहीन किसानों और मजदूरों का नगरों की ओर आना लगातार जारी है। इस स्थिति पर तब तक नियंत्रण भी नहीं पाया जा सकता, जब तक कि ग्रामीण गरीबों को सम्मान के साथ जीवन-यापन करने के साधन उपलब्ध नहीं कराए जाते। और इस दिशा में दूरगामी कार्रवाई के तौर पर जनसंख्या नियंत्रण के उपायों के प्रति ज्यादा गंभीर रवैया अपनाना तथा तात्कालिक कार्रवाई के तौर पर भूमि सुधारों को कठोरता से लागू करना जरूरी है।

एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में काम की गति धीमी होती है, क्योंकि केवल आदेशों के जरिए किसी कार्यक्रम को लागू करना संभव नहीं होता। लेकिन इसका अर्थ यह भी नहीं है कि कड़ा रवैया नहीं अपनाया जा सकता। अगर कहीं भूमि सुधारों की कानूनी व्यवस्था के बावजूद उन्हें अमली जामा नहीं पहनाया गया तो इस संदर्भ में कड़ा रवैया अपनाने में हर्ज ही क्या है। यदि सचमुच गांवों की हालत सुधारनी है और लोगों को गरीबी की रेखा से ऊपर लाना है तो भूमि सुधार लागू करने ही होंगे, यानी भूमि के असमान वितरण की व्यवस्था समाप्त करनी आवश्यक है ताकि जमीन जोतने वालों को जमीन के मालिकाना हक मिलें। इसके लिए यदि राज्य सरकारें तात्कालिक राजनीतिक स्वार्थों से ऊपर उठें तो बहुत कुछ किया जा सकता है। ऐसी स्थिति में जिला कलैक्टरों को जिम्मेदारी और लक्ष्य सौंपे जा सकते हैं, जिन्हें निर्धारित समय में पूरा करना उनकी सेवा-शर्तों का अनिवार्य अंग होना चाहिए। यों भी यदि गांवों में उफनते असंतोष के ज्वालामुखी पर काबू पाना है तो भूमि सुधारों को लागू करने के सिवा कोई दूसरा कारगर रास्ता नहीं है। हमें भूलना नहीं चाहिए कि भूमि ही समस्त ग्रामीण व्यवस्था का मूल आधार है। गांवों में जमीन ही व्यक्ति की आर्थिक हैसियत तय करने वाला निर्णायक कारक है। यह भूमि ही है जो ग्रामांचलों में लोगों के आर्थिक-सामाजिक रिश्तों और संबंधों को तय करती है और सामाजिक संतुलन बनाने या बिगाड़ने में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। भूमि के समान वितरण पर ही अन्य सरकारी कार्यक्रमों की सफलता-असफलता टिकी है, क्योंकि यदि भूमि का समान वितरण होगा तो गांवों में सम्पन्नता और विपन्नता की बड़ी खाई नहीं होगी, दबदबे वाले भू-स्वामियों का आतंक-राज नहीं होगा और परिणामस्वरूप पंचायत से लेकर जिला कलैक्टर के कार्यालय तक सभी ग्रामीणों की आवाज समान स्तर पर गूंजेगी। स्वयं राजनीतिक दलों की दीर्घकालीन सफलता के लिए यह कदम उठाना लाभदायक है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि पश्चिम बंगाल इसका जीता-जागता प्रमाण है जहां भूमि-सुधारों को लागू किया गया।

यदि सचमुच गांवों की हालत सुधारनी है और लोगों को गरीबी की रेखा से ऊपर लाना है तो भूमि सुधार लागू करने ही होंगे, यानी भूमि के असमान वितरण की व्यवस्था समाप्त करनी आवश्यक है ताकि जमीन जोतने वालों को जमीन के मालिकाना हक मिलें। इसके लिए यदि राज्य सरकारें तात्कालिक राजनीतिक स्वार्थों से ऊपर उठें तो बहुत कुछ किया जा सकता है।

अब जहां तक दूसरी जरूरी कार्रवाई—जनसंख्या नियंत्रण—का प्रश्न है, वह एक दीर्घकालीन उपाय है। लेकिन दीर्घकालीन उपाय के नाम पर उसे गंभीरता से न लेना—देश के भविष्य के लिए घातक है। परिवार नियोजन का अब तक जितना प्रचार हुआ है, जनसंख्या विस्फोट को देखते हुए स्पष्ट हो जाता है कि इस प्रचार का अपेक्षित अनुकूल प्रभाव नहीं पड़ा है। इसलिए रणनीति बदलने की जरूरत है। दरअसल जहां एक ओर परिवार नियोजन में तात्कालिक उपायों का प्रचार-प्रसार सार्थक ढंग से किया जाना चाहिए, वहीं दूसरी ओर ज्यादा जरूरी है कि परिवार नियोजन की महत्ता के प्रति लोगों, विशेषत: ग्रामीण लोगों में, चेतना पैदा की जाए। यह निर्विवाद है कि परिवार नियोजन के प्रति चेतना का शिक्षा से गहरा संबंध है। जो लोग शिक्षित हैं, उनमें आमतौर पर छोटे परिवार की उपयोगिता के प्रति गहरा अहसास है। केरल इसका प्रमाण है—जहां देश की सबसे अधिक शिक्षा तथा साक्षरता है और जनसंख्या की वृद्धि दर सबसे कम है। शिक्षित वर्ग यह जानता है कि यदि परिवार छोटा होगा तो सीमित आय के बावजूद बेहतर ढंग से जीवन यापन संभव हो सकेगा और बच्चों की देख-रेख ज्यादा अच्छी तरह हो सकेगी। यही अहसास ग्रामीणों में भी पैदा करने की जरूरत है। लेकिन यह तभी संभव है कि शिक्षा-प्रसार का अभियान पूरी गंभीरता से युद्ध-स्तर पर चलाया जाए और खास तौर पर ग्रामीण महिलाओं को शिक्षित बनाने पर ध्यान केन्द्रित किया जाए। शिक्षा प्रसार उनमें जहां कम आबादी की महत्ता का अहसास पैदा करेगा, वहीं पंचायतों आदि में वे अपनी भागीदारी सशक्त ढंग से निभा पाएंगी और ग्राम विकास में उनकी निर्णायक भूमिका होगी। ❑

संरक्षण भी उतना ही महत्त्वपूर्ण है जितना निर्माण.

यह पृथ्वी हमारे पूर्वजों की धरोहर नहीं बल्कि इसे हमने अपनी भावी पीढ़ियों से उधार लिया है.

यही कारण है कि जहाँ आज इस्पात और सिमेन्ट की ज़रूरतों को अधिक महत्त्व दिया जाता है वहीं हडको, हरे-भरे क्षेत्रों, उद्यानों एवं परिवहन साधनों आदि को भी आवश्यक समझता है.

जिससे कि आज होने वाला विकास आने वाली पीढ़ियों की समृद्धि का पूरक हो.

अपने इसी लक्ष्य को सामने रख हडको, देश की सभी प्रमुख इंफ्रास्ट्रक्चर योजनाओं में उचित एवं टिकाऊ तकनीक का विकास और पूँजी एवं दक्षता का योगदान देता आया है. साथ ही बाढ़ और भूकंप जैसी प्राकृतिक आपदाओं से पीड़ित लोगों की सहायता करने से लेकर सम्पूर्ण मानव बसाव* के लिए भी कार्यरत रहा है.

भविष्य की ज़रूरतों के अनुसार विकास और प्राकृतिक धरोहर का संरक्षण ही हडको का उद्देश्य है.

हडको

राष्ट्र के लिए, सम्पदा का निर्माण

O&M/ HIN

*राष्ट्रीय स्तर पर, 1706 शहरों और हज़ारों गाँवों में रु. 28,000 करोड़ से अधिक लागत की योजनायें कार्यरत हैं. ये योजनाएँ हैं: 68 लाख आवास, •41 लाख सफाई इकाईयाँ •4.8लाख आवासीय भूखण्ड •606 शहरी इंफ्रास्ट्रक्चर योजनायें एवं 553 निर्मिति केन्द्रों का अनुमोदन. अधिक जानकारी के लिए इस पते पर सम्पर्क करें: आवास एवं नगर विकास निगम लिमिटेड, हडको भवन, भारत पर्यावास केन्द्र, लोधी रोड़, नई दिल्ली-110 003 या इन्टरनेट पर www.hudcoindia.com द्वारा जानकारी प्राप्त करें.

गांवों में गरीबी दूर करने के प्रयास : बुनियादी बदलाव जरूरी है

भारत डोगरा *

इस विषय पर एक बहुत लंबी और कभी-कभी बहुत तीखी बहस अर्थशास्त्रियों में चलती रही है कि हमारे देश के गांवों में पिछले कुछ दशकों में गरीबी कम करने में हमें कितनी सफलता मिली है। इन अलग-अलग तरह के आंकड़ों में खोये बिना फिलहाल हम सरकारी स्तर के इस आंकड़े को स्वीकार कर सकते हैं कि हमारे गांवों में इस समय लगभग 32 करोड़ लोग गरीबी की रेखा से नीचे रह रहे हैं। ग्रामीण निर्धनता को दूर करने के लिए अनेक तरह के कार्यक्रम चलाने के बाद और उनमें समय-समय पर तरह-तरह के सुधार करने के बावजूद यदि हमारे गांवों में निर्धन लोगों की संख्या इतनी अधिक है तो पुरानी लीक पर चलते रहने के स्थान पर हमें बुनियादी दृष्टि से नई सोच के लिए तैयार होना चाहिए ताकि हम पहले की गलतियों और कमियों को दूर करते हुए गांवों से गरीबी दूर करने का जो सबसे महत्वपूर्ण लक्ष्य है, उसे प्राप्त कर सकें।

अब तक हमने यह सवाल काफी पूछा है—अमुक सरकारी कार्यक्रम में जो इतना खर्च हुआ, उसका गांवों में व्याप्त गरीबी पर क्या असर पड़ा? कितने लोगों की गरीबी दूर हुई? कुछ हद तक तो यह सवाल बहुत उचित और जरूरी लगता है क्योंकि जो सरकारी खर्च हुआ है, उसकी समीक्षा होनी ही चाहिए। किंतु इस सवाल पर अधिक ध्यान देते हुए हम कई बार इससे भी जरूरी और बुनियादी एक अन्य सवाल भूल जाते हैं और इस तरह सबसे महत्वपूर्ण कुछ मुद्दों की उपेक्षा हो जाती है। यह बुनियादी सवाल है—बिना किसी सरकारी कार्यक्रम पर कुछ खर्च किए ही गांव के आंतरिक ढांचे को किस तरह बदला जा सकता है कि काफी हद तक गरीबी की समस्या अपने आप हल हो जाए।

हमारे देश में बहुत विविधता है। अत: तरह-तरह के गांव यहां मिल जाएंगे, वहां की सामाजिक-आर्थिक स्थिति भी अलग-अलग होगी। फिर भी एक स्थिति बहुत-सी जगह यह नजर आती है कि गांव की जमीन और अन्य प्राकृतिक संसाधनों जैसे तालाब, पोखर, वन, चरागाह, खदान, पशुधन, मछली आदि में गांव के सब लोगों का पेट भरने की क्षमता है, उनकी न्यूनतम जरूरतों को पूरा करने की क्षमता है। किंतु इन प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग में जो विषमता है, उसके कारण कुछ लोगों को तो ढेर-सा मक्खन मिल जाता है और कुछ के नसीब में छाछ भी नहीं आती। अत: सबसे जरूरी बात तो यह है कि हम अपने गांवों से विषमताओं को दूर करें, उन्हें जितना हो सकता है उतना कम करें ताकि गांव के प्राकृतिक संसाधनों पर आधारित आजीविका सबको प्राप्त हो सके।

इस तरह की समता हम सब प्राप्त कर लें तो पूरे गांव में एक समुदाय की भावना विकसित करना सहज होगा। अपने गांव के प्रति एक लगाव की भावना तो बहुत समय से हमारी संस्कृति में रही है, गांव के लोग सुख-दुख के साथी रहे हैं, पर साथ ही यह मानना पड़ेगा कि पिछले कुछ दशकों में इसमें टूटन हुई है। दरअसल जब गांवों में विषमता फैलती है और आर्थिक संबंधों का आधार शोषण बनता है तो एक समुदाय के रूप में गांव की एकता भी टूटती है। दूसरी ओर जब समता स्थापित होती है तो गांव में समुदाय की भावना मजबूत होती है और एक-दूसरे के साथ मिल-जुल कर कार्य करने की ऐसी संभावनाएं बढ़ती हैं, जिससे सारे गांव का भला होता है। वैसे कई गांवों में समता स्थापित करने के ऐसे प्रयास भी हो रहे हैं जिनसे आपसी दरारें बढ़ रही हैं। बहुत हिंसा हो रही है। ऐसी संभावनाएं प्राय: वहां उत्पन्न होती हैं जहां सरकार द्वारा विषमता दूर करने के जो कानून और नीतियां बनाई गई हैं, उनकी उपेक्षा स्वयं सरकार की ओर से होती है। यदि सरकारी अधिकारियों को गरीब लोगों की आजीविका बचाने और इस कार्य में लगे गरीब लोगों के संगठनों की मदद करने के स्पष्ट तथा कड़े आदेश हों और उनके दिल में गरीब लोगों के हकों के प्रति सहानुभूति भी हो तो काफी हद तक शांतिपूर्ण तरीके से भी विषमताएं दूर हो सकती हैं। जब विषमता के लिए जिम्मेदार लोगों को स्पष्ट संदेश मिल जाएगा कि सरकार गरीब लोगों के हक के लिए पूरी तरह प्रतिबद्ध है तो वे भी इस स्थिति से समझौता कर लेंगे। इस समय हमारे सामने एक बहुत बड़ी चुनौती यही है कि हम हिंसा भड़कने की नौबत न आने दें और गांवों में शांतिपूर्ण उपायों से ही विषमता दूर हो जाए।

जब विषमता दूर होती है तो प्रत्यक्ष रूप से गरीब लोगों को संसाधनों का बेहतर हिस्सा मिलता है और इस तरह गरीबी अपने आप कम होती है। पर साथ ही एक बहुत महत्वपूर्ण अप्रत्यक्ष लाभ यह होता है कि लोग बराबरी के स्तर पर गांव की प्रगति के लिए मिल-जुल कर कार्य कर

* स्वतंत्र पत्रकार

सकते हैं और सामुदायिक विकास कोई ऊपर से थोपी गई परियोजना न होकर गांव की एक जीती-जागती, सहज-स्वाभाविक भाव से चलने वाली प्रक्रिया बन जाती है।

एक बार गांव में सच्ची सामुदायिक भावना विकसित हो जाए तो वह गांव क्या नहीं कर सकता है—वह शराब और दहेज जैसी सामाजिक बुराइयों को दूर कर सकता है, झगड़ों का निपटारा कर सकता है, जीर्ण-शीर्ण हो रहे तालाबों का उद्धार कर सकता है, श्रमदान द्वारा कितने ही महंगे विकास कार्यों को सस्ता बना सकता है और गांव के असहाय सदस्यों के प्रति एक सामूहिक जिम्मेदारी की भावना विकसित कर उनकी उचित देख-रेख की व्यवस्था भी कर सकता है। इन सभी कार्यों से गांवों में गरीबी दूर करने में भी मदद मिलेगी।

गांव में विकास कार्य को टिकाऊ बनाना है तो पर्यावरण की रक्षा बहुत जरूरी है। आस-पास के जंगलों की रक्षा करनी है, नया वृक्षारोपण करना है, मिट्टी के कटाव को रोकने के अन्य उपाय करने हैं, जल संरक्षण के प्रयास करने हैं और इन सब कार्यों के लिए सामुदायिक भावना बेहद जरूरी है।

गांव में गरीबी के लिए केवल आंतरिक विषमता जिम्मेदार नहीं है, बहुत-से बाहरी लोग और शक्तियां भी गांववासियों के संसाधनों का हनन करने का प्रयास करती हैं और इस तरह उन्हें अपनी आजीविका के सबसे नजदीकी और सहज उपलब्ध स्रोतों से वंचित करती हैं। इस अतिक्रमण का सामना करते हुए अपनी आजीविका की रक्षा कोई गांव तभी कर सकेगा जब उसमें सामुदायिक भावना मजबूत होगी।

ग्रामीण गरीबी को दूर करने के बारे में हमारी सोच में बुनियादी बदलाव की जरूरत है। यह बुनियादी बदलाव काफी हद तक इस बात से जुड़ा है कि हम गरीबी दूर करने के सरकारी कार्यक्रमों को दूसरी श्रेणी की प्राथमिकता दें और पहली श्रेणी की प्राथमिकता इस बात को दें कि गांवों में विषमता दूर हो तथा समुदाय की भावना और सामूहिक कार्य को मजबूत किया जाए।

अत: स्पष्ट है कि यदि हमारे गांव में ये दो बुनियादी सुधार हो जाएं तो गरीबी अपने आप बहुत कम हो जाएगी। यह भी उतना ही स्पष्ट है कि यह दोनों महत्वपूर्ण मुद्दे—विषमता को कम करना और गांव में सामुदायिक भावना को मजबूत करना—आपस में नजदीकी तौर पर जुड़े हुए हैं।

यदि सरकार गरीबी को कम करने के किसी कार्यक्रम पर कुछ भी खर्च न करे, पर केवल विषमता को कम करने और ग्रामीण समुदाय की भावना को मजबूत करने के लिए जितने प्रयास हो रहे हैं, उन्हें अपना पूर्ण समर्थन दे तथा समस्त सरकारी तंत्र को इस बारे में स्पष्ट निर्देश रहे तो गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों पर खर्च किए बिना ही गरीबी बहुत तेजी से कम होगी।

जैसा कि इस लेख के आरंभ में कहा गया था, गरीब लोगों की जो बड़ी संख्या आज तक बनी हुई है, उसे देखते हुए छोटे-मोटे सुधारों की नहीं अपितु ग्रामीण गरीबी को दूर करने के बारे में हमारी सोच में बुनियादी बदलाव की जरूरत है। यह बुनियादी बदलाव काफी हद तक इस बात से जुड़ा है कि हम गरीबी दूर करने के सरकारी कार्यक्रमों को दूसरी श्रेणी की प्राथमिकता दें और पहली श्रेणी की प्राथमिकता इस बात को दें कि गांवों में विषमता दूर हो तथा समुदाय की भावना और सामूहिक कार्य को मजबूत किया जाए। इस क्षेत्र में भी सरकार ने प्रयास किए हैं और कुछ ईमानदार अधिकारियों ने अपने-अपने क्षेत्र में बहुत लगन से इस दिशा में कार्य किया है, किंतु कुल मिलाकर इस कार्य को वह प्राथमिकता नहीं मिली, जो मिलनी चाहिए थी। गांवों में विषमता यदि कुछ संदर्भों में कम हुई है, तो कुछ संदर्भों में बढ़ी भी है। लाखों गरीब लोगों के पास जो आजीविका का आधार गांवों में मौजूद रहा है, वह संकटग्रस्त हुआ है। विशेषकर आदिवासियों की जमीन छिनने की अनेक दर्दनाक वारदातें हैं, जिन पर अनेक सरकारी स्तर की रिपोर्टें भी उपलब्ध हैं।

गांवों में सामुदायिक भावना तो पहले से कमजोर हो रही है। आपसी झगड़े बढ़ रहे हैं, कोर्ट कचहरी में लंबे खिंचने वाले मुकदमे बढ़ रहे हैं। इससे लाखों ग्रामीण परिवार बरबाद हो रहे हैं। परस्पर मिल कर कार्य करने और सामूहिक जिम्मेदारी निभाने की परंपरा टूट रही है जिससे चरागाह, वन, तालाब आदि का संरक्षण कठिन हो रहा है।

अत: यदि सरकारी तंत्र की गरीबी दूर करने की भूमिका पर नए सिरे से विचार कर, उसे मुख्य जिम्मेदारी यह दी जाए कि गांवों में विषमता दूर करने और सामुदायिक भावना को मजबूत करने के प्रयासों को तरह-तरह से सशक्त किया जाए तो सरकार द्वारा गांवों से गरीबी दूर करने में यह एक महत्वपूर्ण योगदान होगा और बिना सरकारी खर्च के ही गरीबी में उल्लेखनीय कमी आएगी।

साथ ही, सरकार के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की भी एक सार्थक भूमिका बनी रहेगी, किंतु इसके लिए उपलब्ध धन किस तरह खर्च किया जाए, इस बारे में काफी बदलाव लाना होगा। इस बारे में कोई जल्दबाजी नहीं होनी चाहिए कि किसी गांव के लिए जो धन उपलब्ध है, उसे हर हालत में उसी वित्तीय वर्ष में खर्च करना है। जल्दबाजी में कई बार इस धनराशि का सबसे सार्थक उपयोग नहीं हो पाता है। जरूरत पड़ने पर इस धन को उस गांव के किसी कोष या बैंक खाते में इस शर्त के साथ जमा कर देना चाहिए कि वह गांव के गरीब परिवारों के लिए ही खर्च किया जाएगा।

दूसरी इससे भी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस गरीबी उन्मूलन के लिए उपलब्ध धनराशि का उपयोग किस तरह किया जाना है, इसका निर्णय पूरी तरह ग्रामीण समुदाय द्वारा ही लिया जाना चाहिए। ग्रामीण समुदाय और विशेषकर इसमें गरीब वर्ग के प्रतिनिधियों को ही यह तय करने दिया जाए कि इस उपलब्ध धनराशि के किस तरह के उपयोग से स्थानीय परिस्थितियों में गरीबी दूर करने में सबसे अधिक मदद मिलेगी।

तीसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि इस धनराशि के उपयोग में पूर्ण पारदर्शिता होनी चाहिए और ग्रामीण समुदाय के हर सदस्य को यह

(शेष पृष्ठ 51 पर)

गरीबी उन्मूलन के टेढ़े-मेढ़े, संकरे रास्ते

जितेंद्र गुप्त *

विदेशी शासन के लंबे और भारतीय अर्थव्यवस्था को श्रीहीन बनाने वाले युग के बाद 51 वर्ष पहले जन प्रतिनिधि देश के भाग्य विधाता बने। इस अवसर पर प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहरलाल नेहरू ने देश के नाम संबोधन में यह संकल्प दोहराया था कि हमारे सामने जो काम हैं, उनमें 'गरीबी, अज्ञान, रोग और अवसरों की असमानता मिटाने का' लक्ष्य भी शामिल है। भारत को विभाजन और विषमतापूर्ण विश्व के राजनैतिक-आर्थिक रंगमंच पर अपनी पहचान बनाने से संबंधित अनेक तात्कालिक समस्याएं भी विरासत में मिली थीं। लेकिन पंडित नेहरू द्वारा उल्लिखित लक्ष्यों की पूर्ति ही राजनैतिक स्वाधीनता और नवोदित लोकतांत्रिक व्यवस्था को सार्थक बना सकती थी।

गरीबी, निरक्षरता, रोग और अवसरों की असमानता की चुनौती आज भी मौजूद है, बावजूद इसके कि पिछले पचास वर्षों में उपलब्धियों का अध्याय भी कोरा कागज नहीं रहा है। अंतरिक्ष विज्ञान, परमाणु तकनालाजी, कंप्यूटर साफ्टवेयर सरीखे क्षेत्रों में भारत अपनी प्रगति पर गर्व कर सकता है। कृषि क्षेत्र की उत्पादकता भी बढ़ी है। अनाज का उत्पादन 1949-50 में 5.5 करोड़ टन से बढ़कर लगभग 20 करोड़ टन (3.6 गुना वृद्धि) हो गया है जबकि आबादी की वृद्धि दर 2.6 गुना ही रही। आबादी 36.1 करोड़ से बढ़कर लगभग 96 करोड़ हो गई है। अंग्रेजों के शासनकाल की तरह बड़े भूभागों में दुर्भिक्ष नहीं पड़ते हालांकि कुछ आदिवासी और बेहद गरीब वर्गों को अनावृष्टि, स्वल्प मजदूरी, बेरोजगारी तथा वितरणतंत्र की खामियों के कारण अक्सर भुखमरी की मार झेलनी पड़ती है। उड़ीसा में बोलनगीर और कालाहांडी, बिहार में पलामू तथा कुछ अन्य क्षेत्र, मध्यवर्ती भारत के आदिवासी इलाके जिसमें आंध्र प्रदेश, मध्य प्रदेश और महाराष्ट्र के जिले भी शामिल हैं, अभाव और गरीबी के अभेद्य गढ़ बन गए हैं। योजनाबद्ध विकास की भागीरथी का जीवनदायी जल और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों का लाभ इन तक नहीं पहुंच पाता। उनका काफी बड़ा भाग रास्ते में ही भाप बन कर उड़ जाता है। बचा-खुचा हिस्सा गरीबों में भी गरीब—सबसे गरीबजनों—तक नहीं पहुंच पाता। अंत्योदय की अवधारणा भाषणों और कार्यक्रमों की प्रस्तावना तक ही सीमित रह जाती है।

सारा दोष अनियंत्रित जनसंख्या वृद्धि के खाते में नहीं डाला जा सकता। गरीबी परोक्ष रूप से जनसंख्या वृद्धि का समर्थन करती है : गरीब के घर जितनी अधिक संतान होंगी, उसी अनुपात में काम करने वाले, कमाने वाले हाथ भी बढ़ेंगे। यह संभावना और जीवनरक्षक स्वास्थ्य सेवाओं की बदहाली परिवार को सीमित रखने के तर्क को टिकने नहीं देती। केरल और किसी हद तक तमिलनाडु को छोड़ कर किसी भी राज्य में परिवार नियोजन अभियान (अब परिवार कल्याण कार्यक्रम) कारगर साबित नहीं हुआ है, हालांकि यह कार्यक्रम अपनाने वाले देशों में भारत अधिकांश विकासशील देशों से आगे था।

नेहरू जी ने गरीबी से देशवासियों को मुक्ति दिलाने के अलावा अशिक्षा, रोग और अवसरों की असमानता मिटाने की बात भी कही थी जो अकारण नहीं था। न्यूनतम शिक्षा और स्वास्थ्य सेवाओं की व्यवस्था से उपलब्ध अवसरों का लाभ उठाने, आगे बढ़ने के रास्ते तलाशने का मार्ग प्रशस्त होता है, वैचारिक और मानसिक निष्क्रियता तथा जड़ता घटती है, अधिकारों और कर्तव्यों के प्रति सजगता बढ़ती है, नए विचार और अवधारणाएं अधिक स्वीकार्य होती हैं। परिणामस्वरूप लोगों की क्षमताएं बढ़ती हैं। इस मामले में भी हम पिछड़ गए हैं। स्वास्थ्य, शिक्षा, स्वच्छता, भोजन, कपड़ा और आवास की सुविधा—इन छह कसौटियों के आधार पर संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.न.डी.पी.) की रिपोर्ट के अनुसार भारत दुनिया के सर्वाधिक पिछड़े देशों में गिना जाता है।

पिछले पचास वर्षों में शिक्षा, स्वास्थ्य जैसे सामाजिक उत्थान और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम पूरी तरह निष्फल नहीं रहे हैं। 1951 में साक्षरता दर 16-17 प्रतिशत थी जो 1991 में बढ़कर 52 प्रतिशत से ऊपर हो गई। औसत जीवनकाल भी 32 से बढ़कर 61 वर्ष हो गया। लेकिन यह भी सही है कि यह प्रगति उन तमाम वर्गों को छू नहीं पाई है जो अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा में नहीं हैं। ये वर्ग हैं—सदियों से दलित और उपेक्षित वर्ग, बाढ़-सूखा और भूकंप से प्रताड़ित वर्ग, आदिवासी और उत्पादन के साधनों से वंचित वर्ग।

इन्हीं कारणों की वजह से देश की एक-तिहाई आबादी गरीबी की रेखा के नीचे गुजर-बसर कर रही है। जो लोग शहरों में भोजन से 2,200 कैलोरी और गांवों में 2,400 कैलोरी ऊर्जा प्राप्त कर पाने में समर्थ नहीं हैं, उन्हें गरीबी की रेखा से नीचे माना जाता है। इसे भुखमरी रेखा भी कहा जा सकता है।

1989 में योजना आयोग द्वारा नियुक्त विशेषज्ञ दल ने राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण द्वारा घरेलू उपभोग के संग्रहीत आंकड़ों के आधार पर गरीबों की

* स्वतंत्र पत्रकार

आबादी का आकलन किया। उसके द्वारा जुलाई 1993 में दी गई रिपोर्ट स्वीकार कर ली गई। उसके अनुसार 1973-74 में 54.9 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा के नीचे थी, जो 1987-88 में घटकर 39.1 प्रतिशत रह गई। 1993-94 में वह कुछ और घटकर 35.9 प्रतिशत रह गई। पिछले चार वर्ष में कुछ और कमी आई होगी। अत: मोटे तौर पर गरीबी की रेखा आज भी एक-तिहाई आबादी को अपने नागपाश में जकड़े हुए है। इस आकलन से स्पष्ट है कि 1973-74 और 1993-94 के दरम्यान बीस वर्ष में निपट गरीबों की संख्या में 19 प्रतिशत की गिरावट आई है, बावजूद इसके कि इस बीच आबादी का आकार बढ़ता गया। परिणामस्वरूप गरीबी की रेखा के नीचे रहने वालों की जो संख्या 1973-74 में 32 करोड़ थी, 1993-94 में भी वही 32 करोड़ ही बनी रही। दूसरे शब्दों में, बीस वर्षों में 16-17 करोड़ लोग गरीबी की रेखा से उबरे, उतने ही जनसंख्या वृद्धि के कारण उसके दायरे में आ गए।

सकल घरेलू उत्पादन में वृद्धि और गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम के कारण गरीबों के प्रतिशत में कमी आई है। लेकिन गरीबी के चक्रव्यूह को भेदा नहीं जा सका है। इसके लिए हमें तह में जाकर लगभग आधी शताब्दी की विकास यात्रा की आधारभूत अवधारणाओं की जांच करनी होगी।

देश के आर्थिक विकास का जो माडल चुना गया, उसमें आधुनिक उद्योगों, आधारभूत ढांचे और खेती का उत्पादन बढ़ाने पर ही बल दिया गया। इसे प्रसिद्ध अर्थशास्त्री महालानोबिस द्वारा निर्मित माडल कहा जाता है। योजनाकारों की धारणा थी कि उत्पादन यानी सकल घरेलू उत्पादन बढ़ेगा, तो राष्ट्रीय आय में वृद्धि होगी और उसके लाभ छन कर नीचे तक पहुंचेंगे। बेरोजगारी और गरीबी की समस्या अपने आप सुलझती जाएगी। गांवों के लिए सामुदायिक विकास योजना कृषि उत्पादन बढ़ाने के उद्देश्य से ही आरंभ की गई थी। सघन खेती को बढ़ावा देने के कार्यक्रम का उद्देश्य भी यही था। शिक्षा, परिवार नियोजन, सामुदायिक विकास और सिंचाई योजनाओं के लिए पंचवर्षीय योजनाओं में काफी राशि रखी जाती रही, लेकिन यह उत्पादक क्षेत्रों की अभिवृद्धि की दृष्टि से ऐसा किया जाता था। मानव विकास को तथा गांवों में रोजगार सृजन को योजनाओं में केंद्रीय स्थान नहीं मिला। बेरोजगार और अर्ध-रोजगार श्रमिकों के विशाल समुदाय को, रोजगार देने के बारे में आशा की गई थी कि कुटीर और ग्रामोद्योग, सहकारिता आंदोलन और सामान्य विकास के माध्यम से समस्या सुलझती चली जाएगी। तीन पंचवर्षीय योजनाओं की रचना और पूंजी निवेश के प्रति यही दृष्टिकोण हावी रहा।

तीसरी योजना पूरी होने पर आर्थिक बदहाली के कारण चौथी योजना तीन वर्ष के अंतराल के बाद लागू हुई। चौथी योजना (1969-74) में ग्रामीण विकास की पुरानी अवधारणा में छोटे और सीमांत किसानों, खेतिहर मजदूरों और सूखाग्रस्त क्षेत्रों को भी जगह मिल गई। इनके लिए कुछ नए कार्यक्रम आरंभ हुए।

1973-74 में 54.9 प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा के नीचे थी, जो 1987-88 में घटकर 39.1 प्रतिशत रह गई। 1993-94 में वह कुछ और घटकर 35.9 प्रतिशत रह गई। पिछले चार वर्ष में कुछ और कमी आई होगी।

पांचवीं योजना (1974-79) के पहले श्री सी. सुब्रह्मण्यम के नेतृत्व में तैयार हुए दिशापत्र में पहली बार 1972 में स्वीकार किया गया कि अर्थव्यवस्था की वृद्धि दर के भरोसे गरीबी का उन्मूलन नहीं किया जा सकता। इसके लिए 'बेरोजगारी, अर्ध-बेरोजगारी और व्यापक स्तर पर निपट गरीबी पर सीधा हमला' करने की रणनीति अपनानी होगी।

पांचवी योजना में प्रत्यक्ष की जगह अप्रत्यक्ष हमले की, न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति का कार्यक्रम आरंभ हुआ। इसमें प्राथमिक शिक्षा, ग्रामीण स्वास्थ्य, जल आपूर्ति और सड़कों के निर्माण के अलावा ग्रामीण विद्युतीकरण की ओर ध्यान दिया गया। शहरों में गंदी बस्तियों के सुधार का कार्यक्रम भी न्यूनतम आवश्यकताओं में शामिल किया गया।

1977 में नव-निर्वाचित जनता पार्टी की केंद्र सरकार ने सी. सुब्रह्मण्यम के सुझाव पर शब्दश: अमल का फैसला किया और पांचवीं योजना की अवधि में एक वर्ष की कटौती करके छठी योजना (1978-83) का नया प्रारूप तैयार किया। इसकी विशेषता थी कि चौथी योजना के दौरान आंरभ किए गए और कुछ पुराने कार्यक्रमों को मिलाकर समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की संज्ञा दी गई और उसे 1978 से 2,000 विकास खंडों में लागू कर दिया गया। सीमांत किसान और खेतिहर मजदूर एजेंसी और छोटे किसानों की मदद के लिए बनी विकास एजेंसी, सामुदायिक विकास कार्यक्रम और सूखाग्रस्त क्षेत्र कार्यक्रम को समन्वित करके ग्रामीण गरीबों को कमाई के साधन (अर्जक परिसंपत्ति) मुहैया कराने की व्यवस्था की गई। इस कार्यक्रम के अधीन गरीबी की रेखा के नीचे के परिवारों को सरकार द्वारा वित्तीय सहायता (सब्सिडी) और वित्तीय संस्थाओं द्वारा सावधिक ऋण दिलाने का प्रावधान किया गया।

हर राज्य में योजना आयोग द्वारा तय किए गए गरीबी की रेखा के नीचे की आबादी के अनुपात में केंद्र सरकार राज्यों को धनराशि देती है। आधी सब्सिडी केंद्र सरकार देती है और शेष राज्य सरकारें। गरीबी की रेखा के नीचे वाले खेतिहर मजदूरों, छोटे और सीमांत किसानों, अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के सदस्यों, कारीगरों, सामाजिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े वर्गों को ऋण, सब्सिडी और औजार देकर उनकी कमाई बढ़ाने की कोशिश करना इस कार्यक्रम का उद्देश्य है ताकि वे गरीबी की रेखा से ऊपर आ सकें।

1980 में केंद्र में कांग्रेस की वापसी के बाद छठी योजना नए सिरे से बनी और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को 2 अक्तूबर 1980 से देश के सभी विकास खंडों में लागू कर दिया गया।

लक्षित वर्गों के लाभार्थियों का अनुपात तय कर दिया गया। उदाहरण के लिए—अनुसूचित जाति और जनजाति के लाभार्थी 50 प्रतिशत होने चाहिए। महिलाओं का प्रतिशत 40 रहे। तीन प्रतिशत विकलांग चुने जाएं।

जिन परिवारों की मुखिया महिलाएं हैं उन्हें, फालतू भूमि के आबंटियों, मुक्त कराए गए बंधुआ मजदूरों और छोटे परिवार की शर्त मानने वालों को प्राथमिकता देने का भी प्रावधान रखा गया।

सब्सिडी की उच्चतम सीमा निर्धारित कर दी गई है। छोटे किसान 25 प्रतिशत, सीमांत किसान, खेतिहर मजदूर और ग्रामीण कारीगर, 33.5 प्रतिशत तथा अनुसूचित जाति और जनजाति के लोग और विकलांग 50 प्रतिशत सब्सिडी के अधिकारी हैं। अलग-अलग वर्गों और क्षेत्रों के लोगों को 4,000 से 7,500 रुपये तक सब्सिडी मिल सकती है। कम-से-कम पांच लोग यदि सामूहिक रूप से कोई परियोजना चलाते हैं तो लागत का 50 प्रतिशत अथवा सवा लाख रुपये, जो भी कम बैठे, सब्सिडी के तौर पर प्राप्त कर सकते हैं।

पिछले बीस वर्षों में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का दायरा बढ़ता गया है और उसे अधिक कारगर बनाने के प्रयास होते रहे हैं। 1982 में ग्रामीण महिलाओं के लिए एक विशेष कार्यक्रम—ग्रामीण क्षेत्रों में महिला और बाल विकास कार्यक्रम (डवाकरा) आरंभ किया गया ताकि वे सामूहिक रूप से, विश्वासपूर्वक कमाऊ गतिविधियां आरंभ कर सकें। इसे समन्वित कार्यक्रम की उप-योजना के रूप में आरंभ किया गया क्योंकि मूल कार्यक्रम और प्रशिक्षण योजना (ट्राइसेम) में उनकी हिस्सेदारी बहुत कम थी। डवाकरा के अधीन उन्हें कार्यकारी पूंजी, ऋण, प्रशिक्षण आदि मुहैया कराया जाता है। 10-15 महिलाओं के समूह को स्वरोजगार के लिए 25,000 रुपये तक दिए जाते हैं।

विकास कार्यों में भ्रष्टाचार का सीधा संबंध ग्रामीण गरीबों की रोजी-रोटी और जीवन-मरण से जुड़ा है। पता नहीं, सत्ता के गलियारों तक उनकी आवाज पहुंच रही है या नहीं।

स्वरोजगार के लिए गरीब ग्रामीण युवक और युवतियों को प्रशिक्षण देने की योजना (ट्राइसेम) अगस्त 1979 में ही आरंभ हो गई थी। यह योजना समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को एक नया आयाम देती है। इसमें प्रशिक्षणार्थी को छात्रवृत्ति भी मिलती है। समन्वित कार्यक्रम की उप-योजना के रूप में ग्रामीण कारीगरों को जुलाई 1992 से उन्नत किस्म के औजार (टूल किट) दिए जाते हैं जिनकी लागत दो से साढ़े चार हजार रुपये तक होती है। लागत का 90 प्रतिशत केंद्र सरकार सब्सिडी के रूप में देती है।

गरीबी उन्मूलन के लिए अन्य अनेक योजनाएं चल रही हैं, जैसे—जवाहर रोजगार योजना (जो राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम का नया रूप है), और सुनिश्चित रोजगार योजना, जो 2 अक्तूबर, 1993 से 261 जिलों के उन विकास खंडों में आरंभ की गई थी जहां समुन्नत सार्वजनिक वितरण प्रणाली चालू थी। अब यह रोजगार योजना सभी विकास खंडों में चल रही है।

कार्यक्रमों की सीमित सफलता के कारण

ग्रामीण विकास योजनाओं और कार्यक्रमों की सीमित सफलता के अनेक कारण रहे हैं:

(1) पहला कारण तो यही है कि महालानोबिस माडल में छोटे उद्यमों, भूमिहीनों, गरीबों, प्राथमिक शिक्षा तथा सामाजिक सेवाओं को गौण स्थान मिला। इस रणनीति में उत्पादन क्षमता बढ़ाने के लक्ष्य को सर्वोच्च प्राथमिकता मिली जो मध्यवर्ग, अफसरशाही और उत्पादन के साधनों के स्वामियों के अनुकूल पड़ती थी। छोटे पैमाने के उद्योगों को आरक्षण और कुछ रियायतें देकर तथा खादी ग्रामोद्योग आयोग को कुछ धनराशि देकर भगवान भरोसे छोड़ दिया गया।

(2) दूसरा प्रमुख कारण है, जमींदारी उन्मूलन के बाद भूमि-सुधार का जोश ठंडा पड़ गया और हदबंदी में विलंब के कारण बड़ी जोतें बनी रहीं। संक्षेप में ग्रामीण क्षेत्रों में भू-स्वामियों और ऊंची जातियों का वर्चस्व बना रहा क्योंकि बड़े पैमाने पर बेदखलियां हुईं और बटाईदारों का कानूनी हक मारा गया। हरित क्रांति ने आर्थिक विषमता को बढ़ावा दिया। गांवों में निवेश और आर्थिक विकास की कमी के कारण बेरोजगारी बढ़ती गई।

(3) तीसरा बड़ा कारण है कि गांवों का प्रशासन राज्यों की राजधानियों से होता रहा। इसमें स्थानीय जनता की भागीदारी का सवाल ही नहीं पैदा होता। पचास के दशक में पंचायतों की स्थापना अवश्य हुई, किंतु उन पर गांव के प्रभावशाली वर्गों का कब्जा हो गया। अगर 1993 की जगह 1953 में संविधान संशोधित करके पंचायती राज संस्थाओं में सभी वर्गों को प्रतिनिधित्व दिया जाता और जिम्मेदारियां सौंपी जाती तो वे जीवंत संस्थाएं बन सकती थीं। आज राज्य सरकारें पंचायतों को उनके संवैधानिक अधिकार सौंपने के लिए तैयार नहीं हैं। अशिक्षा, गरीबी, शोषण के कारण साधारण ग्रामीणों में जड़ता और निष्क्रियता घर कर गई है।

विभिन्न योजनाओं के लिए गरीबों के चयन पर ग्राम सभा की मुहर लगनी चाहिए, लेकिन बहुधा ऐसा नहीं होता। ग्राम सभा की बैठक बुलाना आवश्यक नहीं समझा जाता। अधिकतर कामों में स्थानीय सरकारी अमले, सरपंच, साहूकार और सबल वर्गों की मर्जी चलती है।

(4) प्रशासनिक तंत्र की खामियां भी कम नहीं हैं। विभिन्न योजनाओं और विभागों में तालमेल और संकल्प का अभाव है। मधु दंडवते की उपाध्यक्षता में तैयार किए गए नौवीं पंचवर्षीय योजना के दिशापत्र में प्रशासनिक खामियों का उल्लेख है। दिशापत्र में स्वीकार किया गया है कि अनेक गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में लक्षित परिवारों, लाभार्थियों, गांवों और जिलों के लिए निर्धारित राशि खर्च हो जाती है, लेकिन कार्यक्रमों का वांछित प्रभाव नहीं होता। अमल करने वाली एजेंसियों की दिलचस्पी निर्धारित लक्ष्य पूरा करने में अधिक होती है, वास्तविक लाभ पहुंचाने में नहीं। कार्यक्रमों का मूल्यांकन होता है, लेकिन कार्यान्वयन की समस्याओं के निरूपण और निराकरण में उसका उपयोग नहीं हो पाता।

इसी दिशापत्र के अनुसार 'कार्यान्वयन करने वाले न सरकार के प्रति जिम्मेदार ठहराए जाते हैं और न जनता के प्रति। जो विकास कार्यक्रमों के लिए निर्धारित धनराशि के दुरुपयोग का सबसे बड़ा कारण है।'

सर्वेक्षणों का परिणाम

स्वतंत्र सर्वेक्षणों और घटनाओं से भी जिन खामियों की पुष्टि होती है उनकी बानगी भी देखते चलें।

राजस्थाम के चार जिलों में मजदूर-किसान शक्ति संगठन ने 1995 में कई गांवों में पंचायतों द्वारा ग्रामीण विकास पर हुए खर्च का आधिकारिक विवरण प्राप्त करके 'जन सुनवाई' का आयोजन किया। सरपंच और अधिकारियों को सबके सामने स्वीकार करना पड़ा कि रोजगार योजना के मस्टर रोल (हाजिरी रजिस्टर) में अनेक फर्जी नाम थे और रिश्वत ली गई थी। इस आंदोलन ने जोर पकड़ा तो मुख्यमंत्री को अधिसूचना जारी करनी पड़ी कि पंचायतें आवेदनकर्ता को विकास कार्यक्रमों पर खर्च के कागजात की प्रमाणित प्रति मुहैया कराएं। लेकिन अब इस अधिसूचना की उपेक्षा की जाने लगी है क्योंकि विभिन्न स्तरों पर पदाधिकारियों को यह बात कतई पसंद नहीं। वे क्यों खुद को कठघरे में खड़ा करें। भारतीय प्रेस परिषद के अध्यक्ष अजित भट्टाचार्य इस वर्ष किशनगढ़ (जिला अजमेर) गए। हिंदुस्तान टाइम्स में उन्होंने लिखा है कि 'सरपंचों ने मिल कर फैसला किया है कि पंचायत के रिकार्ड न दिए जाएं। उन्हें जिला अधिकारियों का समर्थन प्राप्त है। संगठन के कार्यकर्ताओं ने पंचायतों के रिकार्ड प्राप्त करने के लिए 52 आवेदन दिए हैं जिन्हें नामंजूर कर दिया गया है।' स्पष्ट है कि सरपंच और सरकारी अधिकारी अपनी फजीहत नहीं कराना चाहते।

विकास कार्यों में भ्रष्टाचार का सीधा संबंध ग्रामीण गरीबों की रोजी-रोटी और जीवन-मरण से जुड़ा है। पता नहीं, सत्ता के गलियारों तक उनकी आवाज पहुंच रही है या नहीं।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की सफलता या विफलता का जायजा लेने के लिए दो वर्ष पूर्व लखनऊ के गिरि विकास अध्ययन संस्थान ने एक सर्वेक्षण किया था। संस्थान ने 12 पिछड़े जिले चुने। इनमें आठ पहाड़ी क्षेत्र के थे, एक बुंदेलखंड का (जालौन) और तीन पूर्वी उत्तर प्रदेश (मऊ, सिद्धार्थ नगर और गोंडा) के थे। निष्कर्ष निकला कि—(1) अनुसूचित जातियों और जनजातियों के सबसे गरीब परिवारों की अपेक्षा कम गरीब चुने जाते हैं। लाभार्थियों को ऋण और सब्सिडी की पूरी राशि हाथ में नहीं आती। ग्राम स्तर के कर्मचारियों, पंचायत और बैंक पदाधिकारियों की मिलीभगत के कारण अमानत में 20 प्रतिशत की खयानत हो जाती है। (2) गरीब लाभार्थियों के नाम ग्रामसभा द्वारा अनुमोदित होने चाहिए, लेकिन उसकी बैठकें मुश्किल से होती हैं।

ऐच्छिक संगठन 'प्रिया' के डा. चंदन दत्त ने हरियाणा, केरल, मध्य प्रदेश और उत्तर प्रदेश की 195 ग्राम सभाओं के सर्वेक्षण (1995) के बाद बताया कि (1) तकरीबन एक-तिहाई पंचायतों में ग्रामसभा की बैठकें न होने या कोरम पूरा न होने के बावजूद रिकार्ड पूरे किए गए। (2) ग्राम पंचायत में समाज के सबसे कमजोर वर्ग से आने वाले सदस्यों और महिला सदस्यों के प्रति पंचायत सचिव का रुख ज्यादातर या तो उदासीन अथवा पूरी तरह शत्रुतापूर्ण होने की रिपोर्ट मिली।

उत्तर प्रदेश के पिछड़े जिलों की तरह हरियाणा पिछड़ा प्रदेश नहीं है। कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के डाक्टर मोहिंदर सिंह द्वारा आयोजित 121 ग्राम पंचायतों के सर्वेक्षण से भी प्रकट होता है कि गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए लाभार्थियों के चयन में सबकी राय नहीं ली जाती। 40 प्रतिशत पंचायत सदस्यों को चयन-प्रक्रिया में शामिल ही नहीं किया गया।

ऐसे उपाय किए जाने चाहिए कि गरीब वर्गों में जागरूकता आए। जब तक नीचे से दबाव नहीं पैदा होगा और साधारण ग्रामीण संगठित नहीं होंगे, तब तक गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रम वांछित परिणाम नहीं दे पाएंगे।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अधीन लाभार्थियों को जो ऋण दिया जाता है, उसकी वसूली बहुत कम हो रही है। हर साल स्वरोजगार के लिए अरबों रुपये ऋण के रूप में दिए जाते हैं, लेकिन वसूली 29-30 प्रतिशत से ऊपर नहीं हो रही। इसके कई कारण होते हैं जैसे—धंधे में घाटा, दुधारू पशु की मृत्यु, आमदनी का एक हिस्सा दूसरे कामों में खर्च कर देना या पुराना कर्जा चुका देना, आदि। लेकिन इसका एक बड़ा कारण यह है कि कर्ज माफी की घोषणा की प्रतीक्षा अथवा राजनैतिक कार्यकर्ता का परामर्श कि वापसी न करो, देखा जाएगा।

गरीबी उन्मूलन योजनाओं की एक उल्लेखनीय खामी यह है कि अधिकतर कार्यक्रमों में तालमेल नहीं है। यहां तक कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और उसकी उप-योजनाओं में पर्याप्त समन्वय नहीं है। ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय की ताजा वार्षिक रिपोर्ट में भी स्वीकार किया गया है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और ट्राइसेम का संबंध कमजोर है—वे एक-दूसरे से इतने जुड़े नहीं हैं, जितने कि होने चाहिए। जल संग्रहण क्षेत्रों के विकास का कार्यक्रम भी समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम से समन्वय करने में विश्वास नहीं करता। इस तरह हर कार्यक्रम के अंतर्गत लाभार्थियों के चयन, कर्ज और सब्सिडी के वितरण तथा योजनाओं के श्रीगणेश का लक्ष्य तो पूरा हो जाता है, मगर उनका सम्मिलित प्रभाव खर्च के अनुपात से बहुत कम रह जाता है।

गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की सफलता के लिए राजनैतिक संकल्प, उत्तरदायित्व के निर्धारण, पंचायतों को वित्तीय और प्रशासनिक जिम्मेदारी सौंपने, प्राथमिक तथा प्रौढ़ शिक्षा के प्रसार के लिए अभियान चलाया जाना चाहिए। ऐसे उपाय किए जाने चाहिए कि गरीब वर्गों में जागरूकता आए। जब तक नीचे से दबाव नहीं पैदा होगा और साधारण ग्रामीण संगठित नहीं होंगे, तब तक गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रम वांछित परिणाम नहीं दे पाएंगे। ❑

आलस्य में दरिद्रता का वास है। जो आलस्य नहीं करता उसके परिश्रम में लक्ष्मी बसती है।

—संत तिरूवल्लुवर

ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी उन्मूलन : इतना धीमा क्यों

प्रयाग दास हजेला *

नौवीं पंचवर्षीय योजना का, जिसकी रूपरेखा योजना आयोग के भूतपूर्व उपाध्यक्ष डा. मधु दंडवते के कार्यकाल में तैयार हुई थी, वर्तमान सरकार द्वारा अनुमोदन होना है। इसके विवरण के अनुसार देश में दो प्रकार के गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चल रहे हैं। एक वे जो स्वरोजगार को प्रोत्साहित करते हैं और दूसरे वे जो मजदूरी आधारित रोजगार देते हैं।

स्वरोजगार को प्रोत्साहित करने के कार्यक्रम समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) शीर्षक के अंतर्गत तथा दूसरे प्रकार के कार्यक्रम जवाहर रोजगार योजना (जे.आर.वाई.) तथा अन्य मदों के नाम से शुरू किए गए। दोनों तरह के कार्यक्रमों में अंतर यह है कि स्वरोजगार से लाभान्वित परिवार और व्यक्ति जिन वस्तुओं का निर्माण करते हैं या खरीदते या हासिल करते हैं, वे उनकी पूंजी बनकर उनके दीर्घकालीन सुनिश्चित आय का स्रोत बन जाते हैं। उस पूंजी में अपने उद्यम तथा कौशल के अनुसार वृद्धि करके वे अपनी आय बढ़ा सकते हैं, जबकि मजदूरी पर आधारित रोजगार से सामूहिक पूंजी, जैसे—सड़कें, सिंचाई के साधन इत्यादि का निर्माण होता है। स्वरोजगार के लिए गरीबी की रेखा के नीचे रहने वाले परिवारों को अपनी पूंजी प्राप्त करने के लिए बैंकों द्वारा रियायती ऋण देने का प्रावधान है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम केन्द्र सरकार का कार्यक्रम है, जो लगभग 20 वर्ष पूर्व शुरू किया गया था। बहुत बाद में इसके अंतर्गत तीन नई योजनाएं शामिल की गईं ताकि कुछ नए मसले भी इसमें अधिक प्रत्यक्ष रूप से सम्मिलित किए जा सकें।

एक नई योजना जो इस संदर्भ में चलाई गई, वह थी—ग्रामीण युवा स्वरोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम (ट्रायसेम)। इसके अनुसार 18 से 35 वर्ष की आयु के युवाओं के लिए तकनीकी तथा उद्यम संबंधी प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाती है। पहले कुछ चुने हुए जिलों में सर्वेक्षण करके अनुमान लगा लिए जाते हैं कि किन विशिष्ट कौशलों में उन्हें प्रशिक्षित किया जाए ताकि वे आसानी से अपने को रोजगार में लगा सकें। फिर प्रशिक्षण देकर रोजगार के लिए उन्हें अपने प्रयासों पर छोड़ दिया जाता है।

आठवीं योजना (1992 से 1997) के दौरान इस योजना पर 365 करोड़ रुपये व्यय करने के फलस्वरूप करीब 15 लाख युवाओं को प्रशिक्षण दिया जा चुका है और इनमें 5.22 लाख ही स्वरोजगार में लग पाए हैं। केवल 2.30 लाख को मजदूरी रोजगार मिला, लेकिन 50 फीसदी प्रशिक्षित युवाओं को आय का कोई भी जरिया नसीब नहीं हो सका। अनुमान है कि 92 प्रतिशत जिलों में यह जानने के लिए कि क्या प्रशिक्षण दिया जाए, इसका कोई सर्वेक्षण ही नहीं हुआ। स्वाभाविक है कि ऐसी स्थिति में रोजगार के अवसर और प्रशिक्षण में लगभग 53.3 प्रतिशत के तालमेल की कमी रही। इसके अलावा वित्त के अभाव में युवाओं को स्वतंत्र रोजगार शुरू करने में कठिनाइयां हुईं। पूछने पर पता लगा कि ऐसे युवाओं की संख्या कुल की 66.52 प्रतिशत थी।

इसी प्रकार जुलाई 1992 में एक और योजना प्रारंभ की गई, जो अब देश के सभी जिलों में लागू की जा रही है। वह है—ग्रामीण शिल्पियों के लिए उन्नत किस्म के यंत्र या औजारों को मुहैया कराना। इस योजना के अंतर्गत बुनकरों, बीड़ी उद्योग में लगे श्रमिकों और दर्जियों को छोड़कर हर प्रकार के शिल्पियों को बेहतर औज़ार मुहैया कराने का प्रावधान है। बिना बिजली के चलने वाले औजारों के लिए अधिकतम वित्तीय सीमा 2,000 रुपये है जिसमें कारीगरों को अपने पास से 10 प्रतिशत देना होता है, बाकी 90 प्रतिशत सब्सिडी के रूप में दिया जाता है। बिजली से चलने वाले उपकरणों के लिए वित्तीय सीमा 4,500 रुपये है। यदि इससे अधिक वित्त चाहिए तो समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के अंतर्गत दिया जा सकता है। यदि श्रमिक या शिल्पी चाहें तो ट्रायसेम योजना के तहत उन्हें प्रशिक्षण भी दिया जा सकता है।

1992-93 से 1996-97 तक इस योजना के लिए 149 करोड़ रुपये रखे गए थे, जिसमें से कुल 118 करोड़ रुपये यानी लगभग 79 प्रतिशत ही खर्च हुए। यंत्रों की मात्रात्मक आपूर्ति की स्थिति भी यही रही। लक्ष्य सवा आठ लाख यंत्र दिलाने का था, जबकि दिलाए जा सके केवल छह लाख। यहां भी 73 प्रतिशत सफलता मिली। वैसे यह कार्यक्रम अच्छा है क्योंकि इसमें रोजगार से लाभान्वित होने वालों की उत्पादकता की वृद्धि पर प्रत्यक्ष तथा अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

एक विशेष कार्यक्रम महिलाओं और बच्चों के लिए 1982-83 में प्रारंभ हुआ जिसे ग्रामीण महिला तथा बाल विकास कार्यक्रम (डवाकरा) नाम से जाना जाता है। शुरू में यह 50 जिलों में लागू किया गया परंतु अब यह सभी जिलों में लागू है। यह एक बहुउद्देश्यीय योजना है जिससे ग्रामीण महिलाओं को 10-15 महिलाओं के छोटे-छोटे समूह बनाने के

* भूतपूर्व कुलपति, इलाहाबाद विश्वविद्यालय और सागर विश्वविद्यालय

लिए प्रोत्साहित किया जाता है। फिर उन समूहों को एक रकम लगभग 25,000 रुपये दी जाती है, जिसे वे ऐसे कार्यों में लगाएं जिनसे उनकी आय के स्रोत मजबूत हों। कार्यों का क्षेत्र संकुचित नहीं है। महिलाएं शिक्षा, बच्चों के स्वास्थ्य, आहार, परिवार कल्याण इत्यादि क्षेत्रों में भी आगे आ सकती हैं। साथ ही, आर्थिक कार्यकलापों में भी। उनके अपने हुनर में वृद्धि, उसके लिए उन्हें प्रशिक्षण, साख तथा अन्य सहायक सुविधाएं देने का भी प्रावधान है। अपने समूह को प्राप्त हुई रकम वह आपस में बांट कर बारी-बारी से एक-दूसरे को लाभान्वित करती रहती हैं और उन्हें यह अधिकार है कि वह किसी ग्राम सेविका की मदद के बिना स्वयं अपना हिसाब-किताब रखें।

1995-96 में एक और योजना इसमें जोड़ दी गई। वह है—शिशु देखभाल के कार्यक्रमों की योजना ताकि महिलाओं के साथ-साथ उनके बच्चों पर और अधिक ध्यान दिया जा सके। आठवीं योजना के दौरान 141 जिलों में एक ऐसा कार्यक्रम भी शुरू हुआ जिसमें विभिन्न सामाजिक सुविधाओं को साथ मिलाकर अग्रसर होने का प्रयास हो। महिलाओं के लिए डवाकरा की परिधि को काफी विस्तृत करने का प्रयास किया गया है। यद्यपि इसके लिए पहल का दायित्व उन्हीं पर छोड़ा गया है। कल्याण संबंधी सूचना, शिक्षा और सम्प्रेषण की भी जिम्मेदारी सरकार की है ताकि महिलाओं तक सुविधाओं की पर्याप्त जानकारी पहुंचती रहे।

योजना आयोग के अनुसार देश में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या का अनुपात 1973-74 में 54.9 प्रतिशत था, जो घटकर 1993-94 में 36 प्रतिशत हो गया। जिसका अर्थ यह हुआ कि 20 वर्ष के अंतराल में औसत वार्षिक गरीबी उन्मूलन की दर एक प्रतिशत से अधिक नहीं रही, यानी जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर से कम। स्पष्ट है कि इस परिस्थिति में गरीबों की संख्या घटना आसान नहीं है।

नौवीं योजना के प्रारूप के अनुसार 1992-93 से 1996-97 तक महिलाओं के लगभग 92,000 समूह ग्रामीण क्षेत्रों में बनाने थे जबकि वास्तव में 1,41,386 समूह बनाए गए जो अन्य योजनाओं के मुकाबले में एक अच्छी सफलता है यानी 153.85 प्रतिशत की सफलता जिससे कुल मिलाकर 22,66,817 महिलाएं लाभान्वित हुईं। डवाकरा आंध्र प्रदेश, केरल, गुजरात, तथा त्रिपुरा में अधिक सफल रहा। आंध्र प्रदेश में स्त्रियों ने इस कार्यक्रम के चलते कुछ छोटे-छोटे बैंक, परिवहन कम्पनियां भी खोलीं और आटो रिक्शा भी खरीदे। ऐसा लगता है कि महिलाओं में अधिक साक्षरता और गैर-सरकारी संस्थाओं के ताल-मेल से यह सफलता और ज्यादा रही। परंतु कई राज्यों में बनाए गए महिला समूह बंद भी हो गए क्योंकि या तो उनके चयन में कुछ खराबी थी या उनके सदस्यों में एकरूपता का अभाव था या उन्होंने कमजोर आर्थिक कार्यक्रम चुने या कच्चे माल की उपलब्धता नाकाफी थी या विपणन संबंधी कठिनाइयां थीं या संस्थागत वित्त की कमी थी या प्रशिक्षण तथा उत्साह अपर्याप्त था।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की विभिन्न समीक्षाओं से निकले आकलनों ने स्वरोजगार की कल्पना के अतिरिक्त मजदूरी रोजगार को भी साथ-साथ बढ़ाने की अनिवार्यता को मजबूत किया। जैसा ऊपर कहा जा चुका है कि यह रोजगार, सामूहिक या सामाजिक पूंजी निर्माण के आधार पर ग्रामीण श्रमिकों को दिया जाता है। इसलिए इसमें पहल करने का दायित्व मुख्यत: सरकार पर ही रहता है। वैसे इसके कार्यान्वयन की जिम्मेदारी राज्य सरकारों पर अधिक रहती है। धन गरीबों की स्थिति के आधार पर दिया जाता है जिसे ग्राम पंचायतों, पंचायत समितियों और जिला पंचायतों को 65:15:20 के अनुपात में दिया जाता है। चुने हुए 120 पिछड़े जिलों में बेरोजगार गरीबों को वर्ष में 90-100 दिनों का रोजगार दिलाने का प्रावधान है।

इसके अंतर्गत बड़ी तथा छोटी सिंचाई योजनाएं, भूमि संरक्षण, भूमि विकास, पीने के पानी के कुंएं, ग्रामीण सड़कें, स्कूली इमारतों का निर्माण, आवास सुविधाएं और सामाजिक वानिकी इत्यादि आते हैं।

जवाहर रोजगार योजना के नाम से प्रचलित कार्यक्रम 1989 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम का विलय करके शुरू किया गया। 1992-93 से 1996-97 तक इसका लक्ष्य 69,67,565 लाख श्रम दिवसों का रोजगार उपलब्ध कराना था और इसमें 69,690.83 श्रम दिवसों के रोजगार का सृजन भी हुआ। यानी उपलब्धि 100.02 प्रतिशत रही। एक अन्य योजना दस लाख कुंओं की योजना 1988-89 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार/ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम की उप-योजना के रूप में शुरू हुई ताकि छोटे और सीमांत किसानों को कुंओं से सिंचाई की सुविधा मिल सके। बाद में इसे जवाहर रोजगार योजना की उप-योजना बना दिया गया। पहली जनवरी 1996 से यह स्वतंत्र योजना बना दी गई है। 1985-86 से इंदिरा आवास योजना भी चल रही है जिसका उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जन-जातियों के लोगों और मुक्त हुए बंधुआ मजदूरों को मुफ्त आवास उपलब्ध कराना है।

इसके अलावा सुनिश्चित रोजगार योजना भी शुरू की गई जिसके द्वारा 18 से 60 वर्ष तक की उम्र के ऐसे लोगों को गैर-कृषि मौसम में लाभप्रद रोजगार उपलब्ध कराना है जो काम करने के इच्छुक हैं। इसमें गांवों में रहने वाले सभी वयस्क गरीबों को शामिल किया जाता है। प्रत्येक परिवार के अधिकतम दो वयस्कों को सौ दिन का रोजगार सुनिश्चित किया जाता है।

एक राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम भी अगस्त 1995 से चलाया जा रहा है जिसमें वृद्धों को पेंशन, पारिवारिक लाभ-योजना और प्रसूति संबंधी सहायता जैसी सुविधाओं का प्रावधान है। ग्रामीण गरीबी उन्मूलन के इन विभिन्न प्रयासों में जो तस्वीर निकलती है, वह इस प्रकार की है :

- पिछले 25 वर्षों में गरीबी दूर करने की कोशिशों में नये-नये सूत्र जोड़े गए।
- इन सूत्रों में गरीबों को अपने पैरों पर खड़े होने को प्रोत्साहित किया

गया और उनके द्वारा ऐसा न कर पाने पर उन्हें यथासंभव मजदूरी रोजगार प्रदान किए गए।

- महिलाओं तथा वृद्ध लोगों के लिए विशेष कार्यक्रम तथा योजनाएं चलाई गईं।
- गरीबी दूर करने में विभिन्न सरकारों को केवल आंशिक सफलता ही प्राप्त हुई।

योजना आयोग के अनुसार देश में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या का अनुपात 1973-74 में 54.9 प्रतिशत था, जो घटकर 1993-94 में 36 प्रतिशत हो गया। जिसका अर्थ यह हुआ कि 20 वर्ष के अंतराल में औसत वार्षिक गरीबी उन्मूलन की दर एक प्रतिशत से अधिक नहीं रही, यानी जनसंख्या वृद्धि की वार्षिक दर से कम। स्पष्ट है कि इस परिस्थिति में गरीबों की संख्या घटना आसान नहीं है। देश में कुल गरीबों की संख्या जो 1973-74 में 32.10 करोड़ थी, 1993-94 में वह 32 करोड़ पर रुक गई। ग्रामीण क्षेत्रों में यह संख्या क्रमशः 26.10 करोड़ और 24.40 करोड़ रही।

क्या कुशल कार्यान्वयन से ही काम चल जाएगा? बेहतर कार्यकुशलता हर क्षेत्र की तरह इस क्षेत्र में निश्चय ही फर्क पैदा करेगी। परंतु इन व्यष्टि-भावी सुधारों के साथ समष्टि-भावी मुद्दे भी कम महत्वपूर्ण नहीं हैं। सत्ता संभालने के तुरंत बाद प्रधानमंत्री श्री अटल बिहारी वाजपेयी ने एक राष्ट्रीय प्रसारण में माना था कि देश में पिछले कुछ वर्षों से प्रति व्यक्ति खाद्यान्नों की आपूर्ति घट रही है। इसी कारण उन्होंने प्रसारण में ही खाद्यान्नों के उत्पादन को 10 वर्षों में दुगुना करने की बात भी कही जिसे योजना आयोग के उपाध्यक्ष श्री जसवंत सिंह ने नौवीं योजना में जल्द शामिल करने का बयान भी दे दिया है। अब अगर खाद्यान्न आपूर्ति की परिस्थिति यह है, तो क्या गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की संख्या बढ़ाने से या उनके अधिक कुशल प्रशासन से काम चल पाएगा।

उन्होंने सदैव इस बात पर जोर दिया कि आम ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं को विकेन्द्रित इकाइयों द्वारा पहले पूरा किया जाए ताकि लोगों को इन आवश्यकताओं के लिए जहां तक हो सके, शहरों पर आश्रित न होना पड़े। उनके ग्रामीण स्वावलंबन या ग्रामीण स्वराज का मतलब ग्रामीण गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार करने का था।

सच तो यह है कि हम समष्टि-भावी स्तर पर—अधःसंरचना, आवास सुविधाओं, अच्छी शिक्षा, पीने का साफ पानी, बेहतर स्वास्थ्य, पोषक आहार, पर्याप्त खाद्यान्नों की मात्रा—सभी क्षेत्रों में पिछड़े हुए हैं। और इस पिछड़ेपन के चलते केवल व्यष्टि-भावी उपायों में निरंतर परिवर्तन करके हम गरीबी दूर नहीं कर सकेंगे, चाहे वे उपाय कितने कारगर और सुधरे हुए क्यों न हों।

अमरीकी अर्थशास्त्री साइमन कुज़नेट्स के अनुसार भारत में स्वतंत्रता प्राप्ति के समय की गरीबी, ब्रिटेन की औद्योगिक क्रांति की पूर्व संध्या की गरीबी से कहीं अधिक थी जिसका एक अर्थ यह भी हुआ कि औद्योगिक क्रांति में संलग्न देशों के लिए आर्थिक तथा प्रौद्योगिक विकास की दर पर ध्यान केन्द्रित करना अपेक्षाकृत आसान था। फिर उस समय कार्ल मार्क्स के दर्शन का या केन्स की आर्थिक-कल्याण प्रेरित नीतियों का कोई समावेश नहीं हुआ था। तब किसी वैकल्पिक अर्थ व्यवस्था की चुनौती थी ही नहीं, तो प्राकृतिक विधान और उससे जुड़े हुए सबसे ताकतवर को जीने के अधिकार को मान्यता देकर बाजार अर्थ व्यवस्था आसानी से आगे बढ़ने तथा जड़ पकड़ने लगी थी। इस बीच निजी उद्यमियों के विभिन्न कार्यकलापों से जिसके पीछे समाजवाद और साम, दाम, दंड, भेद सभी शामिल थे और जिस पर उनकी हुकूमतों का भी हस्तक्षेप था, विकास प्रक्रिया जोर पकड़ने लगी और वहां गरीबों की भी दशा सुधरने लगी। चूंकि चिन्तन बाजार, अर्थ व्यवस्था के दायरे में ही होता था इसलिए गरीबों को कम मिल रहा है या अधिक—यह सवाल सिर्फ उद्यमियों के दृष्टिकोण से ही जुड़ा रहा। फिर एक ऐसा समय भी आया जब उद्यमियों को लगा कि रोजगार तथा मजदूरियों के बढ़ने से मांग मजबूत होगी और अंततः वे ही लाभान्वित होंगे तो वे उदारवादी हो गए। यद्यपि बाद में इस सोच के कार्यान्वयन में उनके लिए मौलिक कठिनाइयां पैदा होने लगीं। बहरहाल बाजार अर्थ व्यवस्था में गरीबी इस उतार-चढ़ाव के लंबे अंतराल के दौरान और घटने लगी। इस बीच इन देशों में गरीबी के स्तर में गुणात्मक सुधार भी हुआ। फिर भी, इन देशों में उनके मापदंडों के अनुसार लगभग 10 प्रतिशत लोग अब भी गरीबी में रहते हैं।

हमारी गरीबी की परिभाषा उनकी परिभाषा से ज्यादा सीमित है और उसका अनुपात भी उनके अनुपात का तीन या चार गुना है। फिर भी उन्हें समय मिलने के बावजूद उनकी आबादी का दसवां हिस्सा गरीबी में रह रहा है। इस ऐतिहासिक पृष्ठभूमि की चर्चा का एक ही उद्देश्य है कि हम समझें कि हमारी गरीबी अलग तरह की जटिल समस्या है जिसे हम दूसरों की नकल करके दूर नहीं कर सकते। अगर गांधी जी के विचारों की इस देश के लिए कहीं सार्थकता है, तो वह यहां है और गिने-चुने राजनीतिज्ञों की तरह भारत के अर्थशास्त्रियों को भी ऐसा ही सोचना चाहिए।

गांधी जी जिस अर्थ व्यवस्था की कल्पना कर रहे थे, वह इस अर्थ में वैकल्पिक थी कि उसमें गरीबी उन्मूलन 'ट्रिकल डाउन पद्धति' या ऊपर से नीचे होने वाले विकास पर निर्भर नहीं था बल्कि उसके विपरीत यह नीचे से ऊपर पहुंचने या 'ट्रिकल अप' की प्रक्रिया थी। उन्होंने सदैव इस बात पर जोर दिया कि आम ग्रामीण जनता की आवश्यकताओं को विकेन्द्रित इकाइयों द्वारा पहले पूरा किया जाए ताकि लोगों को इन आवश्यकताओं के लिए जहां तक हो सके, शहरों पर आश्रित न होना पड़े। उनके ग्रामीण स्वावलंबन या ग्रामीण स्वराज का मतलब ग्रामीण गरीबी पर प्रत्यक्ष प्रहार करने का था। जैसा कि स्पष्ट है इस कार्य की सफलता लोगों को उनके ऊपर छोड़ देने से ही नहीं मिलेगी जो कहने के लिए संभवतः बाजारीकरण के समर्थक तैयार बैठे रहते हों। इसके लिए उनका रचनात्मक कार्यक्रम, श्रम प्रधान उत्पादन, पंचायती राज और एक व्यापक नैतिक तथा मानवीय दृष्टिकोण, सब कुछ जरूरी है जो कोरे बाजारीकरण से भिन्न है।

(शेष पृष्ठ 51 पर)

गांव गांव बिजली

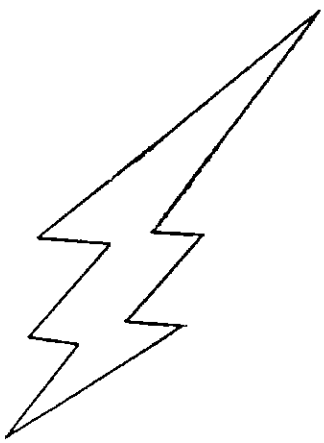

भारत गांवों में बसता है।

देश के 5.79 लाख गांवों में से 5.01 लाख (86%) का विद्युतीकरण किया जा चुका है। बिजली पहुंचाकर आर ई सी गांवों को विकास और आधुनिकता के पथ पर 21 वीं सदी की ओर बढ़ने में सहायता कर रहा है। औसतन हर 10 में से 9 गांवों में बिजली पहुंच गई है।

ऊर्जायित गांव

एक करोड़ दस लाख सिंचाई पंपसेटों को बिजली देकर आर. ई. सी. 76% से अधिक भू-जल का सिंचाई के लिए इस्तेमाल संभव बनाया है। सुनिश्चित सिंचाई से खेती की पैदावार और किसानों की खुशहाली बढ़ी है।

बिजली के पंपसेट सिंचाई के भरोसेमंद साधन हैं। आर ई सी, बैंकों, बिजली बोर्डों और किसानों की मिली-जुली कोशिशों का ही नतीजा है कि अब खेती वर्षा पर निर्भर नहीं है।

विकास के लिए बिजली

राज्य बिजली बोर्डों को वित्तीय सहायता देकर आर ई सी ने विद्युतीकरण और ग्राम विकास की रफ्तार तेज की है।

गांवों के विद्युतीकरण और नलकूपों के ऊर्जायन के जरिए वह ग्रामीण भारत की खुशहाली और उज्जवल भविष्य का मार्ग प्रशस्त कर रहा है।

आर ई सी – ग्राम विकास का उत्प्रेरक

रूरल इलेक्ट्रीफिकेशन कारपोरेशन लिमिटेड

(भारत सरकार का उद्यम)

कोर-4, स्कोप कॉम्पलेक्स, 7, लोदी रोड,

नई दिल्ली-110003

मजदूरी रोजगार कार्यक्रम और स्वरोजगार कार्यक्रम

सतपाल चौहान*

सूखे और बाढ़ जैसी आपदाओं के दौरान गरीबों को राहत पहुंचाने में मजदूरी रोजगार प्रदान करने वाले कार्यक्रम बड़े कारगर सिद्ध होते हैं, इस बात का उल्लेख अनेक विद्वानों ने अपनी-अपनी पुस्तकों में किया है। लेकिन इन कार्यक्रमों में कुछ खामियां भी देखने को मिलती हैं जिन पर विचार करने की जरूरत है। कुछ विद्वान गांवों से गरीबी हटाने के लिए भूमि सुधारों को लागू करने पर जोर देते हैं लेकिन अब यह बात पुरानी लगने लगी है, विशेषकर भारत की सामाजिक-आर्थिक व्यवस्था में तो यह उपाय बहुत पुराना लगने लगा है। गरीबी दूर करने का दूसरा उपाय यह बताया जाता है कि कृषि सहित सभी क्षेत्रों का विकास किया जाए तो गरीबी कम होगी। यह सही है कि सभी क्षेत्रों का विकास होने से गरीबी दूर करने के लिए अनुकूल परिस्थितियां बनती हैं और विकास का गरीबी को कम करने पर असर पड़ता है लेकिन यह असर बड़ा सीमित होता है। कुछ विद्वानों का मत है कि बच्चों, महिलाओं, वृद्धों, विकलांगों जैसे समाज के वर्गों, जो विकास कार्यों में हाथ नहीं बंटा सकते, के लिए विशेष सुरक्षा उपाय जुटाए जाने चाहिए। लेकिन इस लेख में हम अपनी चर्चा को यहां तक सीमित रखेंगे कि मजदूरी रोजगार और स्वरोजगार योजनाएं ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में गरीबी दूर करने में कितनी कारगर सिद्ध हुई हैं।

भाग-2

गरीब

'गरीब' में अनेक तरह के लोग शामिल किए जाते हैं लेकिन 'अस्थायी गरीब' और 'स्थायी गरीब' में अंतर किया जाता है। हालांकि समय, स्थान और अन्य कई बातों का भी इस अंतर पर असर पड़ता है। फिर भी गरीबी दूर करने की कोई नीति बनाते समय इस अंतर को ध्यान में रखा जाता है। गरीबों के वर्गों में एक वे जिनकी आय न्यूनतम है और सब तरह की चीजों से वंचित हैं, उन्हें 'बहुत गरीब' कहा जाता है। दूसरे वे जो 'गरीबी की रेखा' के आस-पास हैं। उन्हें 'इतने गरीब नहीं' कहा जाता है। यहां यह कहना जरूरी है कि नीति-निर्माताओं को पहले 'बहुत गरीब' वर्ग पर ध्यान देना चाहिए न कि दूसरे वर्ग को गरीबी की रेखा से ऊपर लाना चाहिए क्योंकि पहले वर्ग की हालत तो ऐसी है कि मानो उसके नाक तक पानी पहुंच गया हो, और अब थोड़ा और पानी आने से उसके डूब जाने की आशंका हो। दूसरा, सभी गरीबों को एक साथ गरीबी की रेखा से ऊपर लाना वर्तमान अर्थ-व्यवस्था के बूते से बाहर है।

बाजार

विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में भी बहुत अंतर है। कुछ राज्यों/जिलों/क्षेत्रों में बुनियादी जरूरतों की दृष्टि से अच्छा विकास हुआ है और वहां कारोबार वगैरह अच्छा है। दूसरी तरफ कुछ इलाकों में बुनियादी जरूरतों को विकसित नहीं किया गया है और वहां कारोबार मंदा है। पहले वर्ग के इलाके शहरों, औद्योगिक नगरों और कृषि की दृष्टि से विकसित क्षेत्रों के नजदीक हैं। वहां सड़क और संचार सुविधाएं बेहतर हैं और अच्छे बाजार हैं। दूसरे वर्ग के इलाके दूर-दराज के क्षेत्र हैं, ग्रामीण क्षेत्र हैं और वहां अच्छे बाजार विकसित नहीं हुए हैं। इन इलाकों को 'कम विकसित इलाके' कहा जा सकता है।

विकास का गरीबी उन्मूलन पर ज्यादा असर न होता देखकर, भारत सरकार ने सत्तर के दशक के अंतिम वर्षों में गरीबी हटाओ पर विशेष ध्यान देना शुरू किया। इसके लिए सत्तर के दशक के अंतिम वर्षों और अस्सी के दशक के प्रारंभिक वर्षों में गरीबी दूर करने के कई कार्यक्रम शुरू किए गए। इन कार्यक्रमों को अस्सी और नब्बे के दशकों में और मजबूत किया गया। भारत में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों में आय बढ़ाने वाली परिसंपत्तियां प्राप्त करने के लिए ऋण और सब्सिडी उपलब्ध कराई जाने लगी। ये 'स्वरोजगार कार्यक्रम' हैं। दूसरे कई निर्माण-कार्य शुरू करके गरीबों को सरकार द्वारा निर्धारित दर पर दिहाड़ी पर रोजगार उपलब्ध कराया जाता है। इन कार्यक्रमों को 'मजदूरी रोजगार कार्यक्रम' कहा जाता

*भारत सरकार के खाद्य और नागरिक आपूर्ति विभाग में निदेशक

है। इन दोनों प्रकार के कार्यक्रमों की एक विशेषता यह है कि उन राज्यों और जिलों को ज्यादा धन आबंटित किया जाता है, जहां गरीबी अधिक है। दूसरा, ये कार्यक्रम सभी जिलों में सभी गरीबों के लाभ के लिए लागू किए जाते हैं।

बाईबल में ईसा मसीह ने अपने अनुयायियों को बताया है :

"एक किसान एक बार बीज बोने गया। जब वह खेत में बीज बिखेर रहा था, कुछ बीज पगडंडी पर गिर गए और पक्षी उन्हें चुगकर खा गए। कुछ चट्टान पर गिरे और उनसे उगे पौधे कुछ ही दिनों में मुरझा गए क्योंकि उनकी जड़ों को जमीन से नमी नहीं मिल सकी। कुछ बीज कांटों वाले पौधों के बीच गिरे और कांटों वाले पौधों ने उन्हें ज्यादा पनपने नहीं दिया। कुछ खेत में गिरे और उनसे जो फसल उगी, वह कुल डाले गए बीजों से सौ गुना अधिक थी।"

स्वरोजगार और मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों पर भी उपरोक्त बात लागू होती है। अनेक विकासशील देशों में सरकारें अनेक तरह के गरीब लोगों के लिए विकास/गरीबी उन्मूलन के प्रयास के बीज बोती हैं और उनमें अनेक विफलताएं भी हाथ लगती हैं।

स्वरोजगार और मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों का औचित्य

किसी भी आर्थिक कार्यकलाप के लिए पूंजी जरूरी है। कृषि क्षेत्र से सभी लोगों को रोजगार नहीं मिल पाता। ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि क्षेत्र के अलावा कोई स्वरोजगार शुरू करने के लिए पूंजी की जरूरत होती है। बड़ा परिवार और कम आमदनी के कारण गरीब लोग किसी स्वरोजगार के लिए धन नहीं जुटा पाते। ऋण इन गरीब लोगों को मिलता नहीं और अगर मिलता है तो ब्याज की दर बहुत ऊंची होती है जो कभी-कभी 125 प्रतिशत वार्षिक तक होती है। ऊंची ब्याज दर कोई भी स्वरोजगार शुरू करने और मुनाफा कमाने में बड़ी रुकावट है। उचित ब्याज दर पर ऋण मिलने से कोई लाभकारी स्वरोजगार शुरू किया जा सकता है। लेकिन ग्रामीण ऋण बाजार की हालत खस्ता होने के कारण भूमिहीन लोगों को स्वरोजगार के लिए ऋण प्राप्त करने में मुश्किल होती है। इसलिए ऋण/सब्सिडी उपलब्ध कराने वाले कार्यक्रम जरूरी हैं। महाजनों द्वारा ऊंची ब्याज दर वसूल किए जाने की घटनाओं को देखकर ही ऋण पर आधारित स्वरोजगार कार्यक्रम शुरू किए गए।

नीति-निर्माताओं को पहले 'बहुत गरीब' वर्ग पर ध्यान देना चाहिए न कि दूसरे वर्ग को गरीबी की रेखा से ऊपर लाना चाहिए क्योंकि पहले वर्ग की हालत तो ऐसी है कि मानो उसके नाक तक पानी पहुंच गया हो, और अब थोड़ा और पानी आने से उसके डूब जाने की आशंका हो। दूसरा, सभी गरीबों को एक साथ गरीबी की रेखा से ऊपर लाना वर्तमान अर्थ-व्यवस्था के बूते से बाहर है।

जे.एम. केनेस नाम के विद्वान ने 1936 में रोजगार के अवसर जुटाने के उद्देश्य से आर्थिक कार्यक्रम शुरू करने की वकालत की थी। उन्होंने कहा कि इससे अर्थ-व्यवस्था में गतिशीलता आती है। नर्कसे नाम के एक अन्य विद्वान ने 1953 में यह कहते हुए मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों को सही ठहराया कि मजदूरों को रोजगार देकर आर्थिक और सामाजिक बुनियादी ढांचे का निर्माण किया जा सकता है और पूंजी बढ़ाई जा सकती है। इसका असर दीर्घकालीन उत्पादकता बढ़ाने पर भी पड़ता है। मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों को गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रम माना जाता है। सरकार गरीबी उन्मूलन के लिए सीधे दखल देकर रोजगार के अवसर और पूंजी बढ़ा सकती है। भारत में इन कार्यक्रमों का इतिहास बहुत पुराना है। सूखा, बाढ़ और अन्य प्राकृतिक आपदाओं के समय खाद्य सुरक्षा प्रदान करने और रोजगार उपलब्ध कराने में ये कार्यक्रम बड़े कारगर सिद्ध हुए हैं। इनकी भूमिका बुनियादी ढांचे के विकास में भी महत्वपूर्ण रही है जो कि अर्थ-व्यवस्था के विकास का आधार है।

स्वरोजगार और मजदूरी रोजगारी कार्यक्रमों पर बहस

भारत में स्वरोजगार कार्यक्रमों पर लिखे गए साहित्य में ज्यादातर वर्णन इन कार्यक्रमों, विशेष रूप से समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम को लागू करने में व्याप्त भ्रष्टाचार, धांधलियों और नौकरशाही की अकुशलता का मिलता है। विभिन्न अध्ययनों में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की खामियों का उल्लेख है, जैसे योजना बनाने के समय कोताही और नौकरशाही में उत्साह का अभाव। इन कार्यक्रमों का पूरा लाभ गरीबों तक नहीं पहुंच पाता। कई भयंकर कहानियां किस्से प्रचलित हैं, जैसे कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत ऋणों की विफलता, दर्जनों सिलाई मशीनें एक ही गांव में दे दी गईं या सूखा पीड़ित इलाकों में हजारों पशु दिए गए जबकि वहां चारे की किल्लत थी। इसके अलावा एक ही पशु को बार-बार अलग-अलग लोगों ने दिखा दिया। बगाचे और कुरियन जैसे विद्वानों का मत है कि स्वरोजगार कार्यक्रमों की नीति और स्वरूप में कोई कमी नहीं है। बस उन्हें सही तरह से लागू करने की जरूरत है। लागू करने के बारे में विभिन्न खामियों को नीतिगत स्वरूप के साथ देखा जाना चाहिए। इन खामियों के बारे में जानकारी अक्सर मिलती रहती है लेकिन उसे नजरअंदाज कर दिया जाता है।

मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों के बारे में ऐसी कई और शिकायतें मिली हैं जैसे ऐसी सड़कों का निर्माण जिनका हर साल सफाया हो जाता है, व्यापक भ्रष्टाचार, गरीबों तक लाभ न पहुंचना आदि। लेकिन फिर भी गरीबों तक लाभ पहुंचाने में ये कार्यक्रम अन्य कार्यक्रमों से बेहतर माने गए हैं। सूखे और अकाल की स्थिति में इन्हें लागू करना कारगर हो सकता है हालांकि इनसे लाभ शुरू के दौर में ही पहुंचता है। गरीबों को सहायता देने में इन कार्यक्रमों की भूमिका के बारे में किए गए अनेक अध्ययनों में इनके पक्ष और विरोध में अनेक दावे किए गए हैं। कुछ विद्वान स्वरोजगार कार्यक्रमों को इन कार्यक्रमों से बेहतर मानते हैं।

दांतवाला के कथन (1985) पर इस बारे में विवाद शुरू हुआ और बाद में हिरवे भी उसमें शामिल हो गए। उन्होंने गरीबी उन्मूलन की दिशा में स्वरोजगार कार्यक्रमों का समर्थन करते हुए कहा कि मजदूरी रोजगार कार्यक्रम अस्थायी होते हैं और इनसे मजदूरों में इन कार्यक्रमों पर आश्रित रहने की प्रवृत्ति पैदा हो जाती है। रथ (1985) और दंडेकर (1986) ने तर्क दिया कि गरीबों को सहारा देने के लिए मजदूरी रोजगार कार्यक्रम बेहतर हैं क्योंकि ज्यादातर गरीबों में स्वरोजगार के लिए उद्यमशीलता नहीं

होती। इस विवाद से भारत में गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के बारे में रुचि जगी, विशेष रूप से अस्सी के दशक के आखिरी वर्षों में। हालांकि सभी विद्वान इस बारे में एकमत थे कि इन दोनों ही किस्म के कार्यक्रमों को देश में गरीबी उन्मूलन संबंधी नीति का हिस्सा बनाया जाना चाहिए। यह विवाद अभी खत्म नहीं हुआ है और कुछ विद्वान कहते हैं कि स्वरोजगार कार्यक्रम और मजदूरी रोजगार कार्यक्रम दोनों को ही गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम का हिस्सा बनाया जाना चाहिए।

भाग-3

सुबर्तो ने कहा कि जिन क्षेत्रों में बुनियादी ढांचा बेहतर ढंग से विकसित हुआ है, वहां समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम ज्यादा सफल हुआ है। उन्होंने कहा कि जिन राज्यों में गरीब कम हैं, वहां ज्यादा सफलता मिली है। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम विकसित और समृद्ध राज्यों में बेहतर सिद्ध हुआ है जबकि दूर-दराज के इलाकों में इसका कामकाज अच्छा नहीं रहा है। हिरवे के अनुसार स्वरोजगार कार्यक्रम अत्यंत गरीबों के लिए उपयुक्त नहीं होते क्योंकि इन कार्यक्रमों के लिए उद्यमशीलता की जरूरत होती है; जिनकी इन अत्यंत गरीब लोगों में कमी होती है। 1995 में पार्थसारथी नामक विद्वान ने आंध्र प्रदेश में अपने अध्ययन में पाया कि इस कार्यक्रम से हैदराबाद के आस-पास के जिलों में गरीबी में ज्यादा कमी आई जबकि दूर-दराज के जिलों में यह कमी ज्यादा नहीं रही। राव और इरापा ने 1987 में अपने अध्ययनों में बताया कि गरीब वर्ग के कृषि मजदूरों से ज्यादा मध्य वर्ग के परिवार इनका लाभ उठा लेते हैं।

कोहली नाम के विद्वान ने 1987 में कहा कि गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू करना राजनीतिक नेतृत्व की क्षमता पर भी निर्भर करता है। उन्होंने इस संदर्भ में पश्चिम बंगाल का उदाहरण दिया है जहां वामपंथी सरकार है। लेकिन हिरवे (1995) और भल्ला (1995) ने अपने-अपने अध्ययन में सिद्ध किया है कि हरियाणा और हिमाचल प्रदेश में वामपंथी सरकार न होने पर वहां गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम पश्चिम बंगाल की अपेक्षा ज्यादा सफल रहे हैं।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन

हमने राज्यों में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम तथा जवाहर रोजगार योजना के मूल्यांकन का गरीबी के साथ संबंधों का पता लगाने का प्रयास किया। जिला स्तर पर ये संबंध ज्यादा उपयोगी सिद्ध होते, लेकिन इस स्तर पर समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और जवाहर रोजगार योजना को लागू करने और गरीबी के आंकड़ों के बीच संबंधों के बारे में जानकारी उपलब्ध नहीं है। देश के विभिन्न राज्यों में गरीबी और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के कारण गरीबी की रेखा से ऊपर आने वाले परिवारों के बीच कोई सीधा संबंध नहीं है। इसका कारण यह है कि विभिन्न राज्यों या राज्यों के अंदर जिलों, क्षेत्रों और इलाकों में गरीबी समान रूप से व्याप्त नहीं है। इसलिए उपलब्ध आंकड़े सही तसवीर पेश नहीं करते। हालांकि पंजाब में, जिसके सभी जिले बुनियादी ढांचे (बाजार) की दृष्टि से समान रूप से विकसित हैं, यह संबंध दृष्टिगोचर हुआ है। हमने देखा है कि वहां देश में सबसे कम गरीब (7.21 प्रतिशत) हैं और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लाभार्थी सबसे अधिक (53.46 प्रतिशत) हैं। बिहार, गुजरात, मध्य प्रदेश, उड़ीसा, महाराष्ट्र और पश्चिम बंगाल ऐसे राज्य हैं, जहां गरीबों का प्रतिशत अपेक्षाकृत ज्यादा है और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम की सहायता से गरीबी की रेखा से ऊपर उठने वाले परिवारों की संख्या अपेक्षाकृत कम है। इसी तरह हरियाणा में गरीबों का प्रतिशत कम है। और वहां गरीबी की रेखा पार करने वाले समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लाभार्थियों का प्रतिशत भी कम है। उत्तर प्रदेश में क्षेत्रफल काफी अधिक है और वहां बुनियादी ढांचे के विकास और बाजार के विकास के बारे में काफी विविधता है। इन राज्यों में कार्यक्रम की विफलता का कारण इन राज्यों के अंदर व्याप्त विविधता है। इस बारे में पंजाब को उदाहरण के रूप में प्रस्तुत किया जा सकता है, जहां बुनियादी ढांचे के विकास में विविधता नहीं के बराबर है और गरीबी की रेखा पार करने वाले लाभार्थियों का प्रतिशत ज्यादा है। इसी तरह लक्षद्वीप, पांडिचेरि, दमन और दीव तथा चंडीगढ़ में जहां एक-समान विकसित बाजार हैं, कार्यक्रम सफल रहा है। अगर समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के काम-काज को जिला स्तर या प्रखंड स्तर पर देखा जाए तो भी यह पता लगेगा कि इस कार्यक्रम का और बाजार के विकास का आपस में सीधा संबंध है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के समवर्ती मूल्यांकन से मालूम हुआ कि सरकारी रिकार्ड के मुताबिक इस कार्यक्रम के 77 प्रतिशत लाभार्थियों की वार्षिक आय 4,000 रुपये से कम थी, 21.11 प्रतिशत की आय 4,001 से 6,000 के बीच थी और शेष 1.89 प्रतिशत की आय 11,000 रुपये वार्षिक आय की गरीबी की रेखा की निर्धारित सीमा के आस-पास थी। लेकिन समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का मूल्यांकन करने वाले क्षेत्रीय- कर्मियों की रिपोर्ट के अनुसार केवल कार्यक्रम के 38.52 प्रतिशत लाभार्थियों की वार्षिक आय 4,000 रुपये से कम थी। 4,000 से 6,000 रुपये के बीच आय वाले लाभार्थियों का प्रतिशत 35.91 था और 21.88 प्रतिशत लाभार्थी गरीबी की रेखा के आस-पास की आय वाले थे। वास्तव में 3.69 प्रतिशत तो गरीबी की रेखा से ऊपर आय वाले थे और वे इस कार्यक्रम के लाभार्थी होने के पात्र ही नहीं थे। ग्रामीण क्षेत्रों में किसी की सही आय का पता लगाना बड़ी कठिन बात है और सरकारी कागजों में दर्ज लाभार्थियों की आय और क्षेत्रीय-कर्मी द्वारा दर्ज आय में भारी अंतर इस बात का द्योतक है कि या तो लाभार्थियों ने अपनी आय कम करके बताई या फिर क्षेत्रीय कर्मी ने कार्यक्रम की सफलता को बढ़ा-चढ़ा कर दिखाने के लिए आय को गलत दर्ज किया। हम यह कहना चाह रहे हैं कि अभी भी सच्चाई कुछ और हो सकती है और समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के लाभार्थियों का ज्यादा प्रतिशत गरीबी की रेखा के आस-पास या उससे ऊपर होगा। इसका अर्थ यह है कि इस कार्यक्रम से अत्यंत गरीबों के बजाय 'उतने गरीब नहीं' लोगों को ज्यादा लाभ हुआ है। इस कार्यक्रम से गरीबी की रेखा के आस-पास या उससे ऊपर आय वाले लोगों को लाभ होने की पुष्टि अनेक अध्ययनों में की गई है।

मूल्यांकन से यह भी पता लगा कि लाभार्थियों की उपलब्ध की गई परिसंपत्तियों में से 21 प्रतिशत परिसंपत्तियां ठीक हालत में नहीं थीं। इस

कार्यक्रम के शुरू होने के बाद से चार करोड़ 80 लाख लोगों को परिसंपत्तियां जुटाई गई हैं। उनमें से एक करोड़ परिसंपत्तियां ठीक हालत में नहीं थीं। इसका मतलब यह है कि यह सहायता उन लोगों को मिली जो उतने गरीब नहीं थे और ऐसे क्षेत्रों में रहते थे जहां बाजार पहले से विकसित थे और ये परिवार गरीबी की रेखा से ऊपर उठ गए होंगे। अगर यह सहायता उन अत्यंत गरीब लोगों को मिली और उन क्षेत्रों में दी गई, जहां बाजार विकसित नहीं था तो लाभार्थियों ने उस परिसंपत्ति को बेच दिया या शुरू में उसे खरीदा ही नहीं (जैसे कई लाभार्थियों ने एक ही पशु की खरीद दिखाई)। ऐसा होना ही था, क्योंकि इस कार्यक्रम के शुरू से 1994 तक 'अंत्योदय का कल्याण' वाली नीति अपनाई गई जबकि लाभ अत्यंत गरीब लोगों को पहुंचाना था। इसके अनुसार उन राज्यों को अधिक धन उपलब्ध कराया जाता था जहां गरीब लोग अधिक थे। इस बात को सरकार ने नहीं समझा कि ऋण आधारित कार्यक्रम अत्यंत गरीब लोगों के लिए सही नहीं होते। कार्यक्रम को गलत लाभार्थियों और गलत क्षेत्रों में लागू किया गया।

बंगला देश में ग्रामीण बैंक को अध्ययन के लिए विशेष रूप से चुना गया क्योंकि गरीब देशों में ग्रामीण ऋण का परीक्षण वहां सफल माना गया है और उन गरीब देशों को इसमें रुचि उत्पन्न हुई है, जहां नीति-निर्धारक ऋण आधारित गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चलाना चाहते हैं। इनकी मुख्य विशेषताओं में वहां ऋण की वसूली बहुत उल्लेखनीय यानी 98 प्रतिशत के करीब रही है और लक्ष्य समूह तक लाभ पहुंचाने में बहुत सफलता मिली है।

1994-95 से गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बसर करने वाले सभी लोग समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के पात्र हो गए हैं और केवल अत्यंत गरीबों को ही लाभ पहुंचाने की नीति त्याग दी गई है। इससे गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाले लोगों का चयन करते समय क्षेत्र में काम कर रही एजेंसियों को और छूट मिली है। लेकिन इस बात को तो समझना ही होगा कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम जैसे कार्यक्रम अत्यंत गरीब लोगों और उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त नहीं हैं जहां अभी बाजार विकसित नहीं हुआ है। इसलिए गरीबी के आधार पर राज्यों को धन आबंटित करना और उन क्षेत्रों में कार्यक्रम को लागू करना जहां अभी बाजार विकसित होना है, जैसे मुद्दों पर फिर से विचार किया जाना चाहिए। दुख की बात है कि स्वरोजगार कार्यक्रमों की विफलताओं का जिक्र करते समय कभी भी विकसित बाजार का न होना कोई कारण नहीं माना जाता। ज्यादातर सरकारी कर्मचारियों की अकुशलता, कार्यक्रम लागू करने में भ्रष्टाचार, क्षेत्रीय स्तर पर विभिन्न एजेंसियों में समन्वय का अभाव आदि कारण दिए जाते हैं लेकिन इन सभी खामियों की जड़ पर कभी ध्यान नहीं दिया जाता। गरीब भी पैसा खर्च करने में बड़ा समझदार होता है और बाजार को ध्यान में रखकर पैसा खर्च करता है। गरीब ऐसे क्षेत्र में रहने वाला हो सकता है जहां अभी बाजार का विकास ही न हुआ हो या वह अत्यंत गरीब वर्ग से हो और उसमें किसी तरह का आर्थिक कारोबार करने की क्षमता ही न हो। हमारे ख्याल में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रमों को पिछड़े इलाकों में लागू करने और अत्यंत गरीब लोगों को पहले सहायता देने के कारण यह कार्यक्रम पूरी तरह सफल नहीं रहा है। ड्रेजे नामक विद्वान ने उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार और राजस्थान के पिछड़े इलाकों में इस कार्यक्रम को सफलता न मिलने के कारण वहां साक्षरता दर की कमी होना माना है। लेकिन इस कार्यक्रम के मूल्यांकन से इस बात की पुष्टि नहीं हुई। केरल में इस कार्यक्रम को सफल नहीं कहा जा सकता जबकि वह पूरी तरह साक्षर राज्य है। वहां भी इस कार्यक्रम की स्थिति बिहार, उड़ीसा, राजस्थान जैसे कम साक्षरता दर वाले राज्यों की तरह ही रही है। दूसरी तरफ, हिमाचल प्रदेश और पंजाब जैसे कम साक्षरता वाले राज्यों में इस कार्यक्रम को केरल की अपेक्षा अधिक सफलता मिली है। इसलिए इस कार्यक्रम के सफल न होने का कारण कम साक्षरता दर को नहीं माना जा सकता।

ड्रेजे ने गुजरात के एक गांव का भी उदाहरण दिया है जहां समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत काम-काज अच्छा रहा। इस गांव में आर्थिक विषमता नहीं है और स्थानीय दुग्ध सहकारी समिति के रूप में अच्छा बाजार उपलब्ध है और जिन लोगों को सहायता दी गई वे 'अत्यंत गरीब' वर्ग से नहीं थे। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के बारे में प्रकाशित जिस साहित्य में इस कार्यक्रम की विफलता के मामलों की चर्चा की गई है—वे किन स्थानों के बारे में हैं, वहां बाजार और गरीबों की स्थिति कैसी है—इसका कोई ब्यौरा उपलब्ध नहीं है। लेकिन हमें यह जानकर हैरानी नहीं होगी कि इनमें ज्यादातर मामलों में उन लोगों की चर्चा होगी जो अत्यंत गरीब हैं और ऐसे स्थानों में रहते हैं जहां बाजार विकसित नहीं हुआ होगा।

जवाहर रोजगार योजना का मूल्यांकन

इसमें कोई दो राय नहीं कि मजदूरी रोजगार कार्यक्रम उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त होते हैं जहां बुनियादी ढांचा और बाजार अभी विकसित नहीं हुए होते। मजदूरी रोजगार योजनाओं के तहत मिलने वाली मजदूरी न्यूनतम होती है और प्रचलित मजदूरी दर से कम होती है, इसलिए अत्यंत गरीब ही इसके लिए आते हैं। जो अपेक्षाकृत कम गरीब होते हैं वे इस तरह के काम के लिए हाजिर नहीं होते। विभिन्न अध्ययनों से यह पता चलता है कि मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों का लाभ अत्यंत गरीब लोगों ने उठाया है।

जवाहर रोजगार योजना के मूल्यांकन के अनुसार 53.46 प्रतिशत खर्च मजदूरी पर होता है जबकि 60 प्रतिशत होना चाहिए। हरियाणा, पंजाब और चंडीगढ़ में प्रचलित मजदूरी की दर बेहतर है, इसलिए वहां न्यूनतम मजदूरी दर पर काम करने के लिए लोग नहीं मिलते। इन राज्यों में आर्थिक गतिविधियां बेहतर होने के कारण कृषि क्षेत्र और गैर-कृषि क्षेत्र में लोगों को रोजगार मिल जाता है इसलिए वहां मजदूरी रोजगार में मजदूरी पर खर्च कम है। हरियाणा में यह 32.12 प्रतिशत, पंजाब में 20.25 प्रतिशत और चंडीगढ़ में 22.31 प्रतिशत है। इन राज्यों में मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों के तहत मजदूरी पर कम और सामान पर खर्च का प्रतिशत ज्यादा है। इससे यह सिद्ध होता है कि मजदूरी रोजगार कार्यक्रम

इन राज्यों के लिए उपयुक्त नहीं है। इन राज्यों में बाजार विकसित है, इसलिए यहां स्वरोजगार कार्यक्रम अधिक उपयुक्त हैं।

जवाहर रोजगार योजना के मूल्यांकन से मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों के स्व-निर्धारित लक्ष्यों का अंदाजा लगाया जा सकता है जिसके अनुसार कुल सृजित रोजगार में 53.66 प्रतिशत अनुसूचित जाति/अनुसूचित जनजाति के लोगों को मिला और 38.28 भूमिहीन मजदूरों को मिला। यही वर्ग सबसे गरीब माने जाते हैं। मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों के तहत कोई भी आकर रोजगार पा सकता है और इसका ज्यादा लाभ अत्यंत गरीबों ने उठाया है। इससे सिद्ध होता है कि ये कार्यक्रम पहले दौर में अत्यंत गरीबों के लिए लाभकारी हैं। हालांकि दूसरे और बाद के दौरों में कम गरीब वर्ग के लोग भी इसका लाभ उठाते हैं। इसलिए जहां अत्यंत गरीब लोग बसे हैं वहां इन कार्यक्रमों के तहत अधिक धन का प्रावधान करना भी उपयुक्त है। पंजाब जैसे राज्यों में इन्हें लागू करना उचित नहीं कहा जा सकता।

भाग-4

बंगला देश में ग्रामीण बैंक

हमने बंगला देश में भी ग्रामीण बैंक कार्यक्रम को लागू करने का विश्लेषण किया है और यह पता लगाने का प्रयास किया है कि जिला स्तर पर बाजार के विकास और ऋण आधारित गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के बीच क्या संबंध है। बंगला देश में ग्रामीण बैंक को अध्ययन के लिए विशेष रूप से चुना गया क्योंकि गरीब देशों में ग्रामीण ऋण का परीक्षण वहां सफल माना गया है और उन गरीब देशों को इसमें रुचि उत्पन्न हुई है, जहां नीति-निर्धारक ऋण आधारित गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम चलाना चाहते हैं। इनकी मुख्य विशेषताओं में वहां ऋण की वसूली बहुत उल्लेखनीय यानी 98 प्रतिशत के करीब रही है और लक्ष्य समूह तक लाभ पहुंचाने में बहुत सफलता मिली है। ऋण वापसी की शर्तें, ऋण के पात्रों के निर्धारण में सख्ती, लाभार्थियों को प्रेरणा, हर हफ्ते वसूली, महिलाओं को अधिकांश लाभ इसकी अन्य विशेषताएं हैं।

बंगला देश में गरीब लोग ग्रामीण ऋण क्यों लेते हैं जबकि वह उन्हें 33 प्रतिशत महंगा पड़ता है और 98 प्रतिशत मामलों में हर हफ्ते किश्त भी चुकाते हैं? क्या ग्रामीण बैंक के समर्पित अधिकारियों, वापसी के बारे में कड़े अनुशासन, पीयर ग्रुप जैसा दबाव बनाए रखने और ग्रामीण बैंक के संस्थापक युनुस के करिश्माई व्यक्तित्व के कारण ऐसा होता है या इसके कुछ और कारण हैं? हालांकि ये सभी कारण भी महत्वपूर्ण हैं लेकिन ऋण लेने से पहले गरीबों की हालत और जिन क्षेत्रों में ऋण दिया जाता है, वहां बाजार की हालत में बदलाव इसकी सफलता के मुख्य कारण हैं। बंगला देश में ग्रामीण बैंक के बारे में निम्नांकित बातें ध्यान में रखी जानी चाहिए :

(क) ग्रामीण बैंक उन लोगों को कर्ज देता है जिनके पास आधा एकड़ जमीन है या संपत्ति का मूल्य मध्यम दर्जे की एक एकड़ जमीन के बराबर है। बंगला देश में जमीन की बहुत कमी है। कुल 3 करोड़ 50 लाख एकड़ खेती योग्य भूमि है और इस क्षेत्रफल को बढ़ाने की कोई गुंजायश नहीं है। जमीन पर बढ़ते दबाव के कारण भूमिहीनों की संख्या 2.7 प्रतिशत की दर से और जमीन की कीमतें भी बढ़ रही हैं। जमीन की कीमतें इस बात पर भी निर्भर करती हैं कि वह कहां स्थित है। शहर के पास की जमीन की कीमत ज्यादा है और दूर-दराज के गांव की जमीन की कीमत कम है। ग्रामीण बैंक से ऋण प्राप्त करने की सीमा बड़ी लचीली है, विशेष रूप से भूमिहीनों के लिए बहुत ही लचीली है और ऋण लेने वालों में ज्यादातर भूमिहीन ही होते हैं। यह सीमा किसी गांव में एक एकड़ जमीन की कीमत से लेकर ढाका या चिटगांव जैसे शहरों के नजदीक एक एकड़ जमीन की कीमत के बीच हो सकती है। इन दोनों स्थानों की जमीन की कीमतों में दस गुणा का अंतर हो सकता है। ग्रामीण बैंक ने लाभार्थी चुनने का जो तरीका अपनाया है वह सीधा, आसान और सस्ता है और इसमें भारत के समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के मुकाबले लाभार्थी के चयन में ज्यादा छूट है। जमीन की मिल्कियत गरीबी निर्धारण का अच्छा आधार नहीं हो सकती क्योंकि किसी परिवार के पास अगर आधा एकड़ जमीन है लेकिन उसमें मछली का तालाब हो सकता है या आय स्रोत हो सकता है। बंगला देश के 1991-92 आर्थिक सर्वेक्षण के अनुसार एक एकड़ में करीब एक हजार किलोग्राम चावल पैदा होता है और एक किलोग्राम चावल की कीमत ढाका में 13.69 टके और चिटगांव में 13.65 टके हैं। मानो साल में दो बार चावल बोया जाता है तो एक एकड़ से 2,000 किलोग्राम चावल प्रति वर्ष मिलेगा जिसकी कीमत 13.65 टके प्रति किलो ग्राम के हिसाब से 27,300 टके प्रति वर्ष होगी। इस तरह जिस परिवार के पास एक एकड़ जमीन है, उसे अत्यंत गरीब नहीं कहा जा सकता।

(ख) ग्रामीण बैंक से लाभ उठाने वाले परिवारों में से 95 प्रतिशत किसी वेतनभोगी कार्य में लगे थे, उनमें 59 प्रतिशत उद्योग और व्यापार में थे, 14.4 प्रतिशत का कृषि क्षेत्र में मजदूरी मुख्य व्यवसाय था। यह सच है कि ग्रामीण बैंक के लाभार्थियों में ज्यादातर महिलाएं हैं, जो आमतौर पर परिवार की मुखिया नहीं हैं और न ही किसी वेतनभोगी कार्य में संलग्न हैं। लेकिन यदि परिवार को एक इकाई माना जाए तो अधिकतर उन परिवारों को ग्रामीण बैंक ने सहायता दी जो ज्यादा गरीब न थे। कृषि मजदूरों को ग्रामीण बैंक के लाभ से वंचित रखा गया। कृषि मजदूरों में किसी हुनर का न होना और हफ्तावार किस्त न दे सकने की उनकी क्षमता को देखकर उन्हें ग्रामीण बैंक के लाभ से वंचित रखने के मुख्य कारण थे। ऋण की नियमित रूप से वापसी ऋण लेने के पहले हफ्ते से ही शुरू हो जाती है चाहे काम शुरू हुआ हो या नहीं, आमदनी हो रही है या नहीं। इससे पता लगता है कि लाभार्थी की पहले भी कुछ आय थी। अत्यंत गरीबों को वंचित रखा जाता है क्योंकि यह देखा जाता है कि प्रत्येक लाभार्थी ऋण वापस करने की स्थिति में हो।

(ग) ग्रामीण बैंक में यह प्रावधान भी है कि किसी लाभार्थी के बीमार पड़ने पर या अन्य कोई मुसीबत आने पर जैसे परिवार में किसी की मृत्यु, कोई सामाजिक रस्म या कोई रीति-रिवाज पूरा करना हो तो

बैंक के लाभार्थी की सहायता के लिए एक ग्रुप फंड बनाया जाता है और उसमें ऋण दिया जाता है ताकि लाभार्थी को किसी महाजन के पास न जाना पड़े क्योंकि वे लोग ब्याज की बहुत ऊंची दर लेते हैं। इस फंड के ज्यादा भाग (83 से 85 प्रतिशत) का उपयोग नहीं हुआ केवल 11 प्रतिशत ने ही ऋण लिया और उनमें अधिकतर ने पहले ऋण की किस्त चुकाने के लिए ऋण लिया। ऋण को उपभोक्ता वस्तुओं के रूप में इस्तेमाल करने वाले लाभार्थियों का प्रतिशत नगण्य था, हालांकि अत्यंत गरीब परिवारों में ऐसा होता है। इससे पता लगता है कि लाभार्थी परिवार की आय का कोई और स्रोत था। अत: वे अत्यंत गरीब नहीं थे फिर भी ग्रामीण ऋण से जुड़े थे।

(घ) ग्रामीण बैंक से ऋण लेने वालों में 66 प्रतिशत लोगों के पास कोई जमीन नहीं थी क्योंकि कृषि से आय तो फसल उतरने पर होती है और उससे हर हफ्ते ऋण की किस्त नहीं चुकाई जा सकती। भूमिहीन लोगों, जिनमें से अधिकतर छोटे व्यापारी हैं, के लिए पात्रता की सीमा लचीली रखना बैंक अधिकारियों और ग्रामीण बैंक के ग्रुप सदस्यों दोनों के लिए फायदेमंद है क्योंकि इससे वही लोग ऋण लेते हैं जो 33 प्रतिशत ब्याज दर दे सकते हैं और हफ्तावार किस्त अदा कर सकते हैं। ऋण की ब्याज दर 33 प्रतिशत रखी गई है जबकि बैंकों की दर 16 प्रतिशत है। ऐसा इसलिए किया गया है ताकि अमीर लोग ऋण की मांग न करें। लेकिन यह समझ में नहीं आता कि ब्याज दर अधिक रखने से अमीर कैसे दूर रहेंगे और गरीब कैसे फायदा उठाएंगे। यदि ग्रामीण बैंक के ऋण अत्यंत गरीबों के लिए हैं, जैसा कि वास्तव में नहीं है, तो क्या यह शोषण नहीं है? इसलिए पहले महाजन शोषण करता था और अब ग्रामीण बैंक।

मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों को उन क्षेत्रों में लागू किया जाना चाहिए जहां बाजार विकसित नहीं है और अत्यंत गरीब वर्ग के लोगों को वरीयता दी जानी चाहिए। इससे उस क्षेत्र में बाजार का विकास होगा और स्वरोजगार कार्यक्रमों के लिए आधार तैयार होगा। स्वरोजगार कार्यक्रमों से उन लोगों को लाभ पहुंचाया जाना चाहिए जो उतने गरीब नहीं हैं। इसलिए स्वरोजगार कार्यक्रमों का जोर 'उतने गरीब नहीं' वर्ग के लोगों तथा शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों और गांवों के उन क्षेत्रों पर होना चाहिए जहां बाजार विकसित हैं।

संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण बैंक व्यापक नियोजन, कड़े वित्तीय अनुशासन, बैंक कर्मचारियों की समर्पण भावना, ऋण की वसूली के लिए दबाव बनाने के लिए सामूहिक दृष्टिकोण, नई शाखाएं खोलने के लिए सोच-समझकर योजना बनाने, बाजार की ब्याज दर, साप्ताहिक बैठकें और सामाजिक विकास के 16-सूत्रीय चार्टर बैंक तथा कर्मचारियों के सावधानी से चयन और प्रशिक्षण की वजह से बहुत अमीरों को बैंक से दूर रख सका है। लेकिन इसने बहुत गरीबों की भी सहायता नहीं की। इससे केवल थोड़े कम गरीब ही लाभ उठा सके हैं।

ग्रामीण बैंक के जिलों में बाजार का विकास

अब हम जरा ग्रामीण बैंक की सफलता के एक कारण के रूप में बाजार के विकास पर विचार करते हैं। हमारे विचार में यह बहुत महत्वपूर्ण है लेकिन अक्सर किसी भी ऋण-आधारित गरीबी उन्मूलन की सफलता के लिए इसे जरूरी नहीं माना जाता है। ग्रामीण बैंक की नई शाखा खोलने के लिए बैंक के अधिकारियों से यह आशा की जाती है कि सामाजिक-आर्थिक रिपोर्ट तैयार करने के लिए वे गहराई से अध्ययन करें। जहां शाखा खोलने का प्रस्ताव है, उसे उस स्थान के भूगोल, अर्थ-व्यवस्था, जनसंख्या के स्वरूप, परिवहन व्यवस्था, संचार व्यवस्था, बुनियादी ढांचे और राजनीतिक सत्ता के स्वरूप का अध्ययन करना चाहिए। उन्हें अपनी रिपोर्ट में बाजार के विकास को महत्व देना चाहिए। अब ग्रामीण बैंक बंगला देश के पांच पुराने जिलों में खुले हुए हैं। ये जिले हैं—चिटगांव, ढाका, टंगैल, पटुखली और रंगपुर। किसी क्षेत्र में बाजार के विकास को निम्नलिखित बातें प्रभावित करती हैं :

(क) सिंचाई का पानी उपलब्ध होना एक कारण है। ढाका में गंगा-पदमा और बंगशी नदी, चिटगांव में संगुआ और कर्णफुली नदी, रंगपुर में डोनई-चरलकटा-गमुनेश्वरी-कृतिया तथा ब्रह्मपुत्र-यमुना नदियां और घघट तथा टीस्टा नदियां इस बात की प्रतीक हैं कि ढाका, चिटगांव और रंगपुर में सिंचाई के लिए पर्याप्त पानी है। इसलिए वहां बाजार के विकास की संभावनाएं मौजूद हैं।

दूसरा ढाका देश की राजधानी है। वहां देश की सबसे बड़ी मेट्रो प्रणाली है। चिटगांव में दूसरी बड़ी मेट्रो प्रणाली है और वह बंदरगाह है। ये दोनों जिले सड़क मार्ग, रेल मार्ग और वायु मार्ग द्वारा देश के अन्य क्षेत्रों से अच्छी तरह जुड़े हैं (बंगला देश का आर्थिक सर्वेक्षण 1991/92)। ढाका और चिटगांव जिलों में संचार व्यवस्था के विकास के कारण मेट्रो के आस-पास बाजार के विकास की मांग है। 1987 में तंबाकू का 60 प्रतिशत उत्पादन रंगपुर में हुआ।

(ख) नगरीय क्षेत्र की जनसंख्या का प्रतिशत प्रति वर्ग मील में सड़क की लंबाई, ग्रामीण क्षेत्रों में बैंक शाखाओं की संख्या, ग्रामीण क्षेत्रों में रिक्शा चलाने वाले, टेलीविजन के लिए लाइसेंसों की संख्या और बुआई में सघनता के आंकड़ों से पता चलता है कि चिटगांव, ढाका और रंगपुर में बाजार विकसित हैं और टंगेल तथा पटुखली में बाजार इन जिलों की अपेक्षा कम विकसित हैं। दूसरी तरफ फरीदपुर, किशोरगंज और नौआखली के जिलों में बाजार टंगेल और पटुखली से भी कम विकसित हैं और वहां ग्रामीण बैंक कार्यरत भी नहीं हैं (बंगला देश का आर्थिक सर्वेक्षण 1991-92) वर्ष 1987-88 के निश्चित मूल्यों पर चिटगांव में सकल घरेलू उत्पाद का 78.09 प्रतिशत और ढाका में 73.2 प्रतिशत द्वितीय और तृतीय क्षेत्रों से प्राप्त हुआ। टंगेल में इन दोनों क्षेत्रों से 56.04 प्रतिशत, पटुखली से 46.14 प्रतिशत और रंगपुर जिले से 42.25 प्रतिशत प्राप्त हुआ।

संक्षेप में ग्रामीण बैंक के पांच जिलों में ढाका, चिटगांव और रंगपुर में बाजार विकसित है और अन्य दो जिलों में बाजार विकसित नहीं है।

अगर हम नीचे दी गई तालिका में ग्रामीण बैंक की शाखाओं और उन गांवों की संख्या पर नजर डालें जिनमें इस बैंक की शाखाएं खुली हुई हैं, तो हम देखते हैं कि शाखाओं का प्रतिशत और उन गांवों का प्रतिशत जहां शाखाएं कार्यरत हैं—ढाका, रंगपुर और चिटगांव में अधिक हैं। पटुखली में शाखाओं और गांवों का प्रतिशत सबसे कम है और वहां बाजार भी अपेक्षाकृत कम विकसित हैं।

तालिका
ग्रामीण बैंक की शाखाएं और गांव, जहां इस बैंक की शाखाएं कार्यरत हैं

जिला	शाखाओं की संख्या	शाखाओं का प्रतिशत	गांवों की संख्या	गांवों का प्रतिशत
चिटगांव	52	17.45	749	13.74
ढाका	72	24.16	1,422	26.08
टंगेल	57	19.13	1,201	22.03
पटुखली	45	15.10	758	13.90
रंगपुर	72	24.16	1,322	24.25
कुल	298	100	5,422	100.00

स्रोत : हुसैन की तालिका 5, 1988 और ये आंकड़े 1987 के हैं।

इस प्रकार ग्रामीण बैंक उन्हीं क्षेत्रों में कार्यरत हैं जहां बाजार पहले से ही विकसित है। ग्रामीण बैंक की नई शाखा उन क्षेत्रों में नहीं खोली जाती जहां बाजार विकसित नहीं है। टंगेल तथा पटुखली जैसे जिलों के केवल उस इलाके/गांव में शाखा खोली जाती हैं, जहां बाजार विकसित है। हालांकि शाखा खोलते समय इस बात को साफ-साफ नहीं कहा जाता। इसलिए अब हम यह कहने की स्थिति में हैं कि ग्रामीण बैंक उन्हीं जिलों में अपनी सेवाएं प्रदान कर रहा है जहां बाजार ठीक-ठीक विकसित है और ग्रामीण बैंक ने उन लोगों की सहायता की है जो अत्यंत गरीब नहीं थे।

भाग-5

निष्कर्ष

हमने स्वरोजगार और मजदूर रोजगार कार्यक्रमों के अध्ययन में यह पाया कि किसी राज्य में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और जवाहर रोजगार योजना के काम-काज तथा वहां गरीबी के स्तर में आमतौर पर कोई संबंध नहीं है क्योंकि ठीक-ठीक आंकड़े नहीं मिलते। फिर बंगला देश में ग्रामीण बैंक के काम-काज से भी हमें यह पता लगा कि बैंक ने गरीबी उन्मूलन कार्यों के तहत आमतौर पर उन लोगों की सहायता की जो उतने गरीब वर्ग से नहीं थे। हमने यह भी देखा कि ग्रामीण बैंक उन जिलों में कार्यरत हैं जहां कुछ विकसित बाजार हैं। तो हमारा पहला निष्कर्ष यह उभरता है कि समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम या ग्रामीण बैंक जैसे ऋण आधारित गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों की सफलता के लिए विकसित बाजार का होना महत्वपूर्ण है जबकि मजदूरी रोजगार कार्यक्रम उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है जहां बाजार अभी विकसित होना है। भारत में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम और जवाहर रोजगार योजना के विश्लेषण और बंगला देश में ग्रामीण बैंक के कामकाज तथा अन्य संबंधित साहित्य के आधार पर हमारा दूसरा निष्कर्ष यह है कि स्वरोजगार कार्यक्रम उन परिवारों के लिए उपयुक्त होते हैं जो 'उतने गरीब नहीं' वर्ग से हैं और मजदूरी रोजगार कार्यक्रम उन परिवारों के लिए उपयुक्त हैं जो 'अत्यंत गरीब' वर्ग से हैं।

उपरोक्त निष्कर्षों के आधार पर हम बागचे (1987) और कुरियन (1987) के विचारों से सहमत नहीं हैं कि ग्रामीण विकास कार्यक्रम के नीतिगत स्वरूप में कोई खामी नहीं है बल्कि इसे लागू ठीक तरह से नहीं किया जा रहा। अगर किसी कार्यक्रम को नीतिगत स्वरूप भारत के हालात में ठीक तरह लागू करना संभव नहीं हो पा रहा तो उसके नीतिगत स्वरूप में भी कोई दोष है (क्ले और स्केटर 1984)। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम जैसे कार्यक्रम के नीतिगत स्वरूप में दोष यह है कि इसमें एक तरफ तो बाजार के विकास के महत्व की तरफ कोई ध्यान नहीं दिया गया और दूसरी तरफ, इसमें 1994 तक अत्यंत गरीब वर्ग के लोगों को लाभ पहुंचाने की ज्यादा कोशिश की गई। गरीबी उन्मूलन कार्यक्रम से अत्यंत गरीब वर्ग के लोगों में लागू करने और स्वरोजगार कार्यक्रमों को उन क्षेत्रों में लागू करने, जहां अभी बाजार विकसित नहीं है, की वजह से इन कार्यक्रमों में प्रगति धीमी रही और ये कार्यक्रम आलोचना के शिकार बने रहे।

अत्यंत गरीब वर्ग के लोगों की सहायता करने की नीति देखने में बहुत अच्छी लगती है लेकिन इससे गरीबों पर कर्ज का बोझ बढ़ता है जिसे वे दे नहीं सकते। इससे कहीं ज्यादा सोची-समझी नीति अपनाई जानी चाहिए थी (बिग्स 1984)। इसलिए महाजनों द्वारा गरीबों को ऊंचा ब्याज देने और ज्यादतियों की कहानियों को याद कर गरीबों को सब्सिडी पर ऋण उपलब्ध कराना उचित नहीं है (वान विश्के और एडम्स, 1992)। इसलिए हमारा सुझाव यह है कि मजदूरी रोजगार कार्यक्रमों को उन क्षेत्रों में लागू किया जाना चाहिए जहां बाजार विकसित नहीं है और अत्यंत गरीब वर्ग के लोगों को वरीयता दी जानी चाहिए। इससे उस क्षेत्र में बाजार का विकास होगा और स्वरोजगार कार्यक्रमों के लिए आधार तैयार होगा। स्वरोजगार कार्यक्रमों से उन लोगों को लाभ पहुंचाया जाना चाहिए जो उतने गरीब नहीं हैं। इसलिए स्वरोजगार कार्यक्रमों का जोर 'उतने गरीब नहीं' वर्ग के लोगों तथा शहरी और अर्ध-शहरी क्षेत्रों और गांवों के उन क्षेत्रों पर होना चाहिए जहां बाजार विकसित हैं। अन्य क्षेत्रों और अत्यंत गरीब वर्ग के लोगों के लिए मजदूरी रोजगार कार्यक्रम अधिक कारगर हो सकते हैं। गरीबी की रेखा से नीचे जीवन बसर करने वाले लोगों में अंतर और राज्यों/जिलों/प्रखंडों के बीच बाजार के विकास में अंतर को समझा जाना चाहिए अन्यथा भारत में गरीबी की समस्या का समाधान कभी नहीं ढूंढा जा सकेगा।

अनुवाद : बलदेव सिंह मदान

संदर्भ

1. अब्राहम, ए. (1980) : *महाराष्ट्रास एम्प्लायमेंट गारंटी स्कीम,* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 9 अगस्त
2. अहमद, आर., जे.पी. ड्रीज., जे. हिल्स और ए. सेन (संपादक) (1991) : सोशल सिक्योरिटी इन डेवलेपिंग कंट्रीज, ऑक्सफोर्ड : क्लेरनडोन
3. अहमद, आर. और एम. हुसैन (1990) : रिसर्च रिपोर्ट, 1983, अंतर्राष्ट्रीय खाद्य-नीति अनुसंधान संस्थान, वाशिंगटन डी.सी.
4. बागची, एस. (1987) : *पावर्टी एलीवेशन प्रोग्राम्स इन सेवन्थ प्लान,* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 24 जनवरी
5. बंगला देश सांख्यिकी ब्यूरो (1992) : बंगला देश इकानोमिक सर्वे—1991/92, वित्त मंत्रालय, ढाका, गनर्वमेंट प्रेस। 1989 स्टेस्टिकल ईयरबुक आफ बंगला देश, ढाका, गवर्नमेंट प्रेस
6. बंदोपाध्याय, डी. (1985) : स्ट्रेटेजीस फार एलीवियेटिंग पावर्टी इन रूरल एरिया, आर. अस्लम (संपा) ढाका : बी.आई.डी.एस.; बैंगकाक : आई.एल.ओ.—ए.आर.टी.ई.पी.
7. बासू के. (1996) : *रीलीफ प्रोग्राम्स, वेन इट मे बी बेटर टु गिव फूड इन्सटेड आफ कैश,* वर्ल्ड डेवलपमेंट, खंड-24, अंक-1
   —(1981) : इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 3 जनवरी
8. बिग्स, एस.डी. (1984) : *आकवर्ड बट कामन थीम्स इन एग्रीकल्चर पोलिसी,* ई.जे. और बी.बी. शैफर (संपादक), रूम फार मैनुवर : एन एक्सप्लोरेशन आफ पब्लिक पालिसी इन एग्रीकल्चर एंड रूरल डेवलपमेंट
9. क्ले, ई.जे. (1986) : *रूरल पब्लिक वर्क्स एंड फूड फार वर्क्स, ए सर्वे* वर्ल्ड डेवलपमेंट, खंड 14, 10/11
10. डानडेकर, वी.एम. (1986) : *एग्रीकल्चर, एम्प्लाएमेंट एंड पावर्टी,* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 20 सितंबर
11. डानडेकर, के. और एम. साठे (1980) : *एम्प्लायमेंट गारंटी स्कीम एंड फूड फार वर्क प्रोग्राम,* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 12 अप्रैल
12. दांतवाला, एम.एल. (1985) : *गरीबी हटाओ : स्ट्रेटजीस आपशंस,* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 16 मार्च
13. ड्रीज, जे.पी. (1990) : *पावर्टी इन इंडिया एंड आई.आर.डी.पी. डेलूशन,* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 29 सितंबर
14. गाडे, जे. और एच. वाट्जलाविक (1992) : *एम्प्लायमेंट क्रियेशन एंड पावर्टी एलीवेशन थ्रू लेबर इंटेसिव पब्लिक वर्क्स इनलीस्ट डवलेपड कंट्रीज,* इंटरनेशनल लेबर रिव्यू, 131, 1
15. भारत सरकार (जी.ओ.आई.), (1995) : *कंकरेंट इवेल्युएशन आफ इंटीग्रेटेड रूरल डेवलपमेंट प्रोग्राम* (सितंबर 1992 से फरवरी 1993), ए रिपोर्ट, ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय, गवर्नमेंट प्रेस, नई दिल्ली
   —(1994) : *कंकरेंट इवेल्युएशन आफ जवाहर रोजगार योजना (जनवरी-दिसंबर 1992),* ए रिपोर्ट, ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय, गवर्नमेंट प्रेस, नई दिल्ली
   —(1994) : एनुअल रिपोर्ट, ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय, नई दिल्ली
   —(1993) : बेसिक रूरल स्टेटिस्टिक्स, ग्रामीण क्षेत्र एवं रोजगार मंत्रालय, गवर्नमेंट प्रेस, नई दिल्ली
16. ग्रामीण डायलाग (1994) : ग्रामीण बैंक, जुलाई 1994, ढाका
17. गुहन, एस. (1992) : *सोशल सिक्योरिटी इन इंडिया, लुकिंग ए स्टेप एहेड,* एस. गुहन और आर.एच. कैसन (संपा) : पोवर्टी इन इंडिया, रिसर्च एंड पालिसी, मुंबई, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
   —(1986) : *रीचिंग आऊट टु पुअर,* इकानोमिक टाइम्स, रजत जयंती विशेषांक, 19 दिसंबर
18. हिरवे, आई. (1995) : *सिलेक्टिव डेवलपमेंट एंड वाइडनिंग डिस्पेरीटीज़ इन गुजरात,* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 14 अक्तूबर
   —(1988) : *रीशेपिंग आई.आर.डी.पी.,* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 25 जून
   —(1985) : इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 30 मार्च
19. हुसैन, एम. (1988) : *क्रेडिट फार एलीवेशन आफ रूरल पावर्टी, दि ग्रामीण बैंक इन बंगला देश,* रिसर्च रिपोर्ट, 65, अंतर्राष्ट्रीय खाद्य-नीति अनुसंधान संस्थान, वाशिंगटन डी.सी.
20. जैन, पी.एस. (1996) : *मेनेजिंग क्रेडिट फार रूरल पुअर, लेसन्स फ्राम ग्रामीण बैंक,* वर्ल्ड डेवलपमेंट, खंड-24, अंक-1
   —कीनेस, जे.एम. (1936) : जनरल थियोरी आफ एम्प्लायमेंट, इंटरस्ट एंड मनी, लंदन : मैकमिलन
21. कोहली, ए. (1987) : स्टेट एंड पोवर्टी इन इंडिया—पोलिटिक्स आफ रिफोर्मस, प्रेनसटन यूनिवर्सिटी प्रेस
22. कुरियन, एन.जे. (1990) : *एम्प्लायमेंट पोटेंशियल इन रूरल इंडिया, एन एनालिसिस,* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 29 दिसंबर
   —(1987) : *आई.आर.डी.पी. हाऊ रेलेवेंट इज इट,* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 26 दिसंबर
23. मैक्सवेल, एस.जे. और एच.डब्ल्यू. सिंगर (1979) : *फूड एड टू डेवलपिंग कंट्रीज़ : ए सर्वे,* वर्ल्ड डेवलपमेंट, खंड-7, अंक-3
24. नर्कसे, आर. (1953) : प्रोबलम्स आफ कैपिटल फोरमेशन इन अंडर-डेवलप्ड कंट्रीज़, आक्सफोर्ड : बीसिल ब्लैकवैल
25. ओसमानी, एस.आर. और ओ.एच. चौधरी (1983) : *शांटिरन इम्पेक्ट आफ फूड फार वर्क इन बंगला देश,* बंगला देश डेवलपमेंट स्टडीज, 11
26. पार्थसारथी, जी. (1995) : *पब्लिक इंटरवेंशन एंड रूरल पावर्टी : केस आफ नान सस्टेनेबल रिडक्शन इन आंध्र प्रदेश,* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 14 अक्तूबर
27. रथ, एन. (1985) : *गरीबी हटाओ : केन आई.आर.डी.पी. डू इट?* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 9 फरवरी
28. रैवालियन, एम. (1991) : *आन दि कवरेज आफ पब्लिक एम्प्लायमेंट स्कीम्स फार पावर्टी एलीवेशन,* जनरल आफ डेवलपमेंट इकानोमिक्स, खंड-34
29. सेथ, ए. (1990) : *डेवलपमेंट स्टरेटीजीस एंड रूरल पुअर,* द जरनल आफ पीजेंट स्टडीज, खंड-17, अंक-2
30. सुब्बाराव, के. (1985) : *रीजनल वेरीएशंस इन इम्पेक्ट आफ एंटी पावर्टी प्रोग्राम्स : ए रिव्यू आफ एवीडेंस,* इकानोमिक एंड पोलिटिकल वीकली, 26 अक्तूबर
31. सुन्दरम के. और एस.डी. तेंदुलकर (1985) : *एंटी पावर्टी प्रोग्राम्स इन इंडिया : एन एपरेज़ल,* द पुअर इन एशिया, प्रोडक्टीविटी रेज़िंग प्रोग्राम्स एंड स्ट्रेटेजीस, क्वालालंपूर, एशिया और प्रशांत विकास केंद्र। ❑

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की हकीकत

डा. महीपाल*

भारत में आजादी प्राप्त करने के बाद गरीबी हटाना मुख्य उद्देश्य रहा है। लेकिन तीसरी पंचवर्षीय योजना तक ज्यादा जोर कुल राष्ट्रीय उत्पाद बढ़ाने पर ही रहा, यह मान कर कि राष्ट्रीय आय में वृद्धि से गरीबों की हालत में सुधार अपने आप ही हो जाएगा। लेकिन ऐसा हुआ नहीं। हरित क्रांति बड़ी जोर-शोर से शुरू हुई और माना गया कि यह ग्रामीण क्षेत्र की विभिन्न समस्याओं के लिए रामबाण सिद्ध होगी। लेकिन यह भी नहीं हुआ और यह क्रांति भी ग्रामीण गरीबों और देश के पिछड़े क्षेत्रों के लोगों को 'बाई बाई' करके निकल गई।

चौथी पंचवर्षीय योजना के दौरान महसूस किया गया कि वर्तमान नीति अव्यावहारिक है क्योंकि यह सही निशाने पर 'हिट' नहीं कर पाई है। इसलिए यह मानकर कि गरीबी पर सीधा प्रहार किया जाए, विशेष लक्ष्य उन्मुख कार्यक्रम शुरू किए गए। यह भी माना गया कि गरीबी एक बहुआयामी समस्या है जिसके समाधान के लिए बहुआयामी कार्यक्रमों की जरूरत है। गांवों में गरीबी दूर करने की समूची व्यूहरचना को पांच ग्रुपों में बांटा जा सकता है :

1. **स्वरोजगार सृजन कार्यक्रम :** इसके अंतर्गत गरीबों द्वारा स्वरोजगार शुरू करने के लिए सस्ते ऋण दिए जाने का प्रावधान है। इसके अंतर्गत समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.), ट्रायसेम, डवाकरा, 'टूलकिट्स' आदि कार्यक्रम आते हैं।

2. **मजदूरी रोजगार सृजन कार्यक्रम :** इसके अंतर्गत गरीबों को विभिन्न सामाजिक परिसंपत्तियां सृजित करते हुए फुटकर रोजगार दिया जाता है। जवाहर रोजगार योजना, सुनिश्चित रोजगार योजना, दस लाख कुंओं की योजना आदि इसके अंतर्गत आते हैं।

3. **विशेष क्षेत्र विकास कार्यक्रम :** इन कार्यक्रमों का उद्देश्य पिछड़े क्षेत्रों में संरचनात्मक गतिविधियों को विकसित करके गरीबों को रोजगार के अवसर प्रदान करना है। सूखा बहुल क्षेत्र कार्यक्रम, मरुभूमि विकास कार्यक्रम इस श्रेणी में आते हैं।

4. **न्यूनतम आवश्यकता कार्यक्रम :** इसके अंतर्गत ग्रामीण जल योजना, ग्रामीण सड़कें, आवास आदि कार्यक्रम आते हैं।

5. **संस्थागत सुधार :** इसके अंतर्गत भूमि सुधार, नई पंचायती राज व्यवस्था और गैर-सरकारी संस्थाओं को सहायता प्रदान करना जैसे कार्यक्रम शामिल हैं।

प्रस्तुत लेख में समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.), जवाहर रोजगार योजना, सूखा बहुल और मरुभूमि विकास कार्यक्रम तथा भूमि सुधार और पंचायती राज व्यवस्था का आकलन करते हुए इन कार्यक्रमों की हकीकत सामने रखने का प्रयास किया गया है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम

इसमें कोई दो राय नहीं है कि आई.आर.डी.पी. के अंतर्गत लाखों परिवारों को रोजगार प्राप्त हुआ है। उदाहरण के लिए आठवीं पंचवर्षीय योजना में इस कार्यक्रम से 108 लाख से ज्यादा परिवारों को रोजगार प्राप्त हुआ। इस कार्यक्रम के अंतर्गत 1997-98 के दौरान 16 लाख से अधिक परिवारों को वित्तीय सहायता प्रदान की गई। लेकिन अगर लक्ष्यों के आधार पर इस कार्यक्रम का मूल्यांकन करें तो निम्न परिणाम सामने आते हैं:

- कार्यक्रम की मार्गदर्शिका के अनुसार कुल लाभार्थियों में से कम-से-कम 50 प्रतिशत अनुसूचित जाति और जनजाति के लाभार्थी होने चाहिए। लेकिन कार्यक्रम का समवर्ती मूल्यांकन, जिसका संदर्भ सितम्बर 1992 से अगस्त 1993 था और जो अक्तूबर 1996 में प्रकाशित हुआ, उसके अनुसार राष्ट्रीय स्तर पर इन जातियों के 46.62 प्रतिशत लाभार्थी थे।

- इसी प्रकार महिलाओं के लिए 40 प्रतिशत लाभ आरक्षित थे। लेकिन समवर्ती मूल्यांकन के अनुसार पुराने लाभार्थियों में इसका प्रतिशत 23.69 था जबकि नये लाभार्थियों में बढ़कर 30.57 प्रतिशत हो गया लेकिन फिर भी निर्धारित लक्ष्य से लगभग 10 प्रतिशत कम रहा। यहां एक महत्वपूर्ण बात जो इन आंकड़ों से नजर नहीं आती कि कुल महिला लाभार्थियों में से अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति की महिलाएं कितने प्रतिशत थीं।

- इसी प्रकार कार्यक्रम की मार्गदर्शिका के अनुसार शारीरिक रूप से विकलांगों के लिए तीन प्रतिशत लाभ आरक्षित हैं जबकि समवर्ती मूल्यांकन के अनुसार इन वर्गों के मात्र 0.84 प्रतिशत लाभार्थियों को ही लाभ पहुंचा। इसका अर्थ यह निकलता है कि यह कार्यक्रम

* अनुसंधान अधिकारी, राष्ट्रीय अनुसूचित जाति एवं जनजाति आयोग

जहां लाखों परिवारों को रोजगार प्रदान कर रहा है, वहीं लक्षित वर्ग, जो कमजोर और असहाय हैं, उन्हें उचित लाभ प्रदान करने की सामाजिक जिम्मेदारी पूरी नहीं कर रहा है।

- इस कार्यक्रम के अंतर्गत जो पुराने लाभार्थी हैं उनको सहायता की पुन: 'डोज' मात्र 3.62 प्रतिशत दी गई है। सामूहिक जीवन बीमा योजना का पता 57 प्रतिशत लाभार्थियों को नहीं है। इसका अर्थ है कि कार्यक्रम का प्रचार अच्छी तरह से नहीं हुआ है। विकास पत्रिका जो कि सभी लाभार्थियों के पास होनी चाहिए थी, मात्र 31 प्रतिशत लाभार्थियों के पास ही प्राप्त हुई। आई.आर.डी.पी. का ट्राइसेम और डवाकरा के साथ लिंकेज नहीं के बराबर लोगों के पास था। जबकि अच्छे परिणाम प्राप्त करने के लिए इनमें 'लिंकेज' होना आवश्यक है। समवर्ती मूल्यांकन यह भी दर्शाता है कि 40 प्रतिशत लाभार्थी ऐसे थे जिनकी वार्षिक आय निर्धारित 11,000 रुपये से अधिक थी।

जवाहर रोजगार योजना

छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान 1980 में राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम और 1983 से ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम इस ध्येय को ध्यान में रखकर आरंभ किए गए कि गांव में गरीबों और भूमिहीनों को रोजगार प्रदान किया जा सके। लेकिन इन कार्यक्रमों का मूल्यांकन बताता है कि इन कार्यक्रमों के लागू होने के 8 वर्ष बाद भी 50 प्रतिशत से अधिक गांव ऐसे थे, जहां इन कार्यक्रमों से कोई लाभ नहीं पहुंचा था। दूसरे, इन कार्यक्रमों को लागू करने में लोगों की भागीदारी नहीं के बराबर थी। इन्हीं कमियों को दूर करने के लिए 1989 में जवाहर रोजगार योजना शुरू की गई।

इस योजना के द्वारा ही देश के सभी गांवों में विकास का धन पहुंचा और पिछले एक दशक के दौरान देश के लगभग हर गांव में गलियां पक्की हो गई हैं, सभी जगह खड़ंजा बिछ गए हैं। गांव में कहीं कहीं यह भी कहा जाता है कि जे.आर.वाई. (जवाहर रोजगार योजना) के बिना पी.आर.आई. (पंचायती राज संस्थाएं) कुछ भी नहीं हैं अर्थात पी.आर.ई. ही जे.आर.वाई. है।

इसमें कोई दो राय नहीं है कि इस योजना के द्वारा ही देश के सभी गांवों में विकास का धन पहुंचा और पिछले एक दशक के दौरान देश के लगभग हर गांव में गलियां पक्की हो गई हैं, सभी जगह खड़ंजा बिछ गए हैं। गांव में कहीं-कहीं यह भी कहा जाता है कि जे.आर.वाई. (जवाहर रोजगार योजना) के बिना पी.आर.आई. (पंचायती राज संस्थाएं) कुछ भी नहीं हैं अर्थात पी.आर.ई. ही जे.आर.वाई. है। लेकिन इस योजना के सर्वेक्षणों से मालूम हुआ है कि यह योजना अपने निर्धारित लक्ष्यों को पूरा नहीं कर पाई है। इसके अब तक दो सर्वेक्षण हो चुके हैं। प्रथम सर्वेक्षण जनवरी से दिसम्बर 1992 में किया गया था जिसके निष्कर्ष जुलाई 1994 में प्राप्त हुए थे। दूसरे सर्वेक्षण का संदर्भ वर्ष जून 1993 से मई 1994 था जिसके निष्कर्ष मार्च 1997 में प्राप्त हुए हैं।

गरीबी की रेखा से नीचे परिवारों को रोजगार दिलाना योजना का मुख्य उद्देश्य है। प्रथम दौर के अनुसार उपलब्ध कराए गए कुल रोजगार में से अनुसूचित जाति और जनजाति का हिस्सा 54 प्रतिशत तथा भूमिहीन परिवारों का हिस्सा 38 प्रतिशत था जो कि प्रथम दौर के सर्वेक्षण से क्रमश: 13 प्रतिशत और 5 प्रतिशत कम था। इससे निष्कर्ष निकलता है कि या तो एक वर्ष के बाद ये कमजोर वर्ग गरीबी रेखा को पार कर गए या फिर योजना के लिए रोजगार प्राप्त करने वाले परिवारों का चयन नियमानुसार नहीं हुआ। नियमानुसार 30 प्रतिशत रोजगार के अवसर महिलाओं के लिए आरक्षित हैं। लेकिन दूसरे दौर के निष्कर्ष बताते हैं कि मात्र 16.59 प्रतिशत महिलाओं को ही रोजगार मिला जबकि प्रथम दौर के अनुसार महिलाओं का रोजगार में हिस्सा 20 प्रतिशत था। इस प्रकार एक वर्ष के बाद महिलाओं की हिस्सेदारी में बढ़ोतरी के बजाय कमी हो गई।

रोजगार सृजन की उपलब्धियों के बारे में प्रथम सर्वेक्षण बताता है कि सर्वेक्षण से पहले 30 दिनों में औसत श्रमिक को 3.81 दिन का रोजगार प्राप्त हुआ जबकि दूसरे दौर के अनुसार 11 दिन का रोजगार मिला। इस प्रकार एक वर्ष के बाद रोजगार सृजन में लगभग 180 प्रतिशत की वृद्धि हुई है जो कि प्रशंसनीय है। लेकिन मजदूरों की आय के आधार पर देखें तो यही बात बदल जाती है। उदाहरणार्थ, प्रथम दौर के अनुसार 33 प्रतिशत परिवार ही ऐसे थे जिसकी वार्षिक आय 6,400 रुपये से कम थी जबकि दूसरे दौर के अनुसार ऐसे मजदूरों की संख्या 47 प्रतिशत थी। इसका अर्थ यह हुआ कि योग्य परिवार जिनकी आय 6,400 रुपये से कम थी, उनकी संख्या में एक वर्ष के दौरान लगभग 30 प्रतिशत की कमी आई। यह शोचनीय विषय है कि सुधार के बजाय स्थिति और बिगड़ी है। दूसरे शब्दों में जैसा ऊपर स्पष्ट है कि दूसरे दौर में रोजगार बढ़ा भी है तो वह अयोग्य परिवार के लिए बढ़ा है। अगर संशोधित गरीबी रेखा के अनुसार देखें (जो 1991-92 की कीमतों पर 11,000 रुपये वार्षिक थी), तो दूसरे दौर के अनुसार 18 प्रतिशत मजदूर, जिन्होंने योजना के अंतर्गत रोजगार प्राप्त किया, गरीबी रेखा से ऊपर के परिवारों से संबंधित थे।

परिसंपत्तियां तभी सार्थक होंगी, यदि उनमें गुणवत्ता है। प्रथम दौर के अनुसार 26 प्रतिशत परिसंपत्तियां निम्न स्तर की, अपूर्ण और निर्धारित मापदंडों के अनुसार नहीं थीं। जबकि दूसरे दौर में इस तरह की परिसंपत्तियों का प्रतिशत 23.88 प्रतिशत था। लेकिन कुछ राज्यों में स्थिति और भी गंभीर थी। योजना की मार्गदर्शिका के अनुसार मजदूरों को न्यूनतम वेतन अधिनियम द्वारा निर्धारित मजदूरी ही देनी है। पुरुष व महिला श्रमिक को समान कार्य के लिए समान मजदूरी देनी है। दूसरे दौर के अनुसार पंजाब को छोड़कर लगभग सभी राज्यों में अकुशल श्रमिकों को कमोवेश न्यूनतम मजदूरी मिल रही थी। पंजाब में पुरुष व महिला श्रमिकों की मजदूरी क्रमश: 36.33 रुपये तथा 38 रुपये थी जबकि यहां निर्धारित न्यूनतम मजदूरी 39.74 रुपये थी। यह बात समझ में नहीं आती कि पंजाब जैसे विकसित राज्यों में भी श्रमिकों को न्यूनतम मजदूरी नहीं मिल रही है।

लगभग सभी राज्यों में न्यूनतम वेतन में भिन्नता देखी गई है। पुरुष व महिला श्रमिक की मजदूरी में भी भिन्नता पाई गई है। उदाहरण के लिए

आंध्र प्रदेश में पुरुष की मजदूरी 26.24 रुपये थी तथा महिला की 20.12 रुपये थी। केरल में पुरुष की मजदूरी 42.30 रुपये थी तथा महिला की 40.88 रुपये थी। महाराष्ट्र में पुरुष की 24.90 रुपये तथा महिला की 19.70 रुपये थी।

उपरोक्त अध्ययन से स्पष्ट है कि जवाहर रोजगार योजना के क्रियान्वयन में बहुत सुधार की आवश्यकता है।

सूखा बहुल क्षेत्र कार्यक्रम व मरुभूमि विकास कार्यक्रम

सूखा बहुल क्षेत्र कार्यक्रम 1973-74 से चलन में है और मरुभूमि विकास कार्यक्रम 1977-78 से लागू है। इन कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य फसल उत्पादन, पशुधन, भूमि की उत्पादन शक्ति, जल तथा मानव संसाधनों पर सूखे के प्रतिकूल प्रभावों को कम करना है। इसके अलावा पारिस्थितिकी संतुलन की बहाली को प्रोत्साहन देना, परिसंपत्तिहीन और महिलाओं, जैसे ग्राम समुदाय के उपेक्षित वर्गों की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में सुधार लाना भी है।

इन कार्यक्रमों का मूल्यांकन करने के लिए योजना आयोग के भूतपूर्व सदस्य प्रो. सी.एच. हनुमंत राव की अध्यक्षता में एक तकनीकी समिति गठित की गई थी जिसने 1994 में रिपोर्ट प्रस्तुत की थी। इस समिति की समीक्षा के अनुसार ये कार्यक्रम लगभग दो दशक से लागू हैं लेकिन यह कोई खास प्रभाव नहीं डाल पाए हैं। कार्यक्रमों की योजना प्रक्रिया भी तदर्थ ही है और जो कुछ योजना है, वह भी विभिन्न बजट प्रस्तावों के कारण है। जिला/ब्लाक स्तर पर वाटर शेड स्तर पर कोई बहुआयामी एजेन्सी नहीं है जो इन कार्यक्रमों की उचित योजना बना सके। जो परिसम्पत्तियां कार्यक्रमों के अंतर्गत सृजित हुई हैं उनका रख-रखाव उचित ढंग से नहीं हो रहा है। कार्यक्रमों के उचित क्रियान्वयन में लोगों की भागीदारी सुनिश्चित नहीं की गई है। कार्यक्रमों के लागू होने में हो रही विभिन्न कमियों को दूर करने के लिए इस समिति ने जिला स्तर और जिले से नीचे स्तर पर विभिन्न समितियां बनाने का सुझाव दिया है। इन्हीं को ध्यान में रखकर केन्द्र सरकार ने अक्तूबर 1994 में नये दिशा-निर्देश जारी किए जिन्हें पहली अप्रैल 1995 से लागू किया गया। इन दोनों कार्यक्रमों को प्रभावी ढंग से लागू करने के लिए पंचायती राज संस्थाओं की सहभागिता अति आवश्यक है।

भूमि सुधार

प्रथम पंचवर्षीय योजना से ही कृषि विकास और ग्रामीण अर्थ व्यवस्था को सुदृढ़ करने तथा गरीबों और भूमिहीनों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए भूमि सुधार राष्ट्रीय एजेंडा का मुख्य आधार रहे हैं। इसी उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए जमींदारी प्रथा और बिचौलियों का उन्मूलन, भूमि की अधिकतम सीमा निर्धारित करना, बीस सूत्री कार्यक्रम के एक भाग के रूप में अधिकतम सीमा से फालतू भूमि के वितरण की प्रगति पर नजर रखना और संविधान की नौवीं अनुसूची में 277 भूमि कानूनों को शामिल करना सम्मिलित है। ये सब भूमि सुधार को लागू करने के लिए महत्वपूर्ण कदम हैं। लेकिन फिर भी इस ओर बहुत प्रयास करने की जरूरत है। नौवीं पंचवर्षीय योजना के लिए योजना आयोग ने एक स्टीरींग ग्रुप गठित किया था जिसने प्रो. जी.के. चड्डा की अध्यक्षता में एक सब-ग्रुप 'भूमि सुधार, भूमि प्रयोग व भूमि प्रबंध' विषय पर गठित किया। इस ग्रुप की सिफारिशों का उल्लेख संक्षेप में नीचे किया जा रहा है। विभिन्न राज्य जो भूमि जोत की अधिकतम सीमा को बढ़ाने की सोच रहे हैं और कर्नाटक जैसे कुछ राज्यों ने अधिकतम सीमा में छूट दे दी है, यह गरीबों और भूमिहीनों के हित में नहीं है। जनजातीय भूमि पर विभिन्न कानूनी खामियों के कारण गैर-जनजाति के लोगों का आधिपत्य हो गया है। अत: जनजातियों के लिए भूमि आधिपत्य का कानून अनुसूचित क्षेत्रों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी होना आवश्यक है। भूमि रिकार्डों को अपडेट करना और उचित रख-रखाव, पंचायतों और राजस्व कर्मियों की सहभागिता से आवश्यक है। कोमन प्रोपर्टी रिसोर्स के बारे में लोगों को जानकारी देना आवश्यक है। महिलाओं को सामाजिक बराबरी और लिंग में समानता का दर्जा दिलाने के लिए कम-से-कम कुल फालतू भूमि का 40 प्रतिशत महिलाओं में बांटना और बाकी 60 प्रतिशत पति व पत्नी के संयुक्त नाम से करना आवश्यक है। लघु व सीमांत काश्तकारों के लिए उचित तकनीकी ढांचा तैयार करना आदि भी जरूरी है।

अत: केन्द्र सरकार व राज्य सरकारों को उपरोक्त सिफारिशें लागू करनी चाहिए ताकि ग्रामीण समाज में सामाजिक लोकतंत्र, जैसा कि डा. अम्बेडकर ने संविधान सभा में कहा था, स्थापित किया जा सके।

निष्कर्ष

इसमें कोई संदेह नहीं है कि ग्रामीण क्षेत्र में विकास हुआ है। इसे साबित करने के लिए ढेरों आंकड़े दिए जा सकते हैं। लेकिन पिछले 50 वर्षों में ग्रामीण क्षेत्र में विषमता बढ़ी है, बेरोजगारी बढ़ी है, इसके भी ढेरों आंकड़े दिए जा सकते हैं। वर्तमान में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देने की जरूरत है:

- अनुसूचित जाति, जनजाति व महिलाओं को उचित हक दिए जाएं ताकि विकास के साथ सामाजिक न्याय स्थापित किया जा सके। उपरोक्त विभिन्न कार्यक्रमों का मूल्यांकन बताता है कि ग्रामीण विकास में उन्हें उनका उचित हिस्सा प्राप्त नहीं हुआ है।
- ग्रामीण विकास कार्यक्रमों के माध्यम से विभिन्न सामाजिक परिसम्पत्तियों का निर्माण हुआ लेकिन उनकी देख-रेख ठीक प्रकार से नहीं हो रही है। बहुत-सी सम्पत्तियां एक तेज बारिश या तेज आंधी से लगभग ध्वस्त हो जाती हैं। कई परिसम्पत्तियों के निर्माण में उचित सामान न लगने के कारण भी इनकी आयु कम हो जाती है। अत: परिसम्पत्तियों के रख-रखाव पर उचित ध्यान देना जरूरी है।
- विभिन्न कार्यक्रमों में समन्वय और 'इन्टर लिंकेजज' की जरूरत है। खासतौर पर जहां ये कार्यक्रम लागू किए जा रहे हैं, वहां इनको 'कनवर्ज' करने की जरूरत है।

(शेष पृष्ठ 60 पर)

प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वालों के लिए उपयोगी पत्रिका

योजना

- आर्थिक एवं सामाजिक विषयों की मासिक पत्रिका

योजना में आप पाएंगे :

- अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं पर ज्ञानवर्धक सामग्री विकास तथा योजना प्रक्रिया का गहन एवं विस्तृत विश्लेषण
- पर्यावरण, साक्षरता, विज्ञान एवं टेक्नोलौजी और पर्यटन जैसे आर्थिक-सामाजिक विषयों पर विशेषज्ञों द्वारा लिखित सारगर्भित लेख
- विभिन्न विकास योजनाओं की जानकारी

पत्रिका आज ही खरीदिए अथवा नियमित ग्राहक बनिए

योजना की विषय सामग्री का चयन प्रतियोगी परीक्षाओं में बैठने वाले युवाओं की आवश्यकताओं को ध्यान में रखकर किया जाता है जो उनकी सफलता में सहायक हो सकती है।

(*योजना* अंग्रेजी, उर्दू, असमिया, बंगला, गुजराती, कन्नड़, मराठी, मलयालम, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु और तमिल में भी निकलती है)

मूल्य : एक प्रति 5/- रु.

चंदे की दरें : ☐ एक वर्ष : 50 रु. ☐ दो वर्ष : 95 रु.
☐ तीन वर्ष : 135 रु.

मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/ पोस्टल आर्डर निम्न पते पर भेजें :

सहायक व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार)
पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066
दूरभाष : 6105590

विक्रय केन्द्र ● प्रकाशन विभाग

☐ पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली-110001 ☐ सुपर बाजार (दूसरी मंजिल), कनाट सर्कस, नई दिल्ली-110001 ☐ हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 ☐ कामर्स हाउस, करीम भाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई-400038 ☐ 8-एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता-700069 ☐ राजाजी भवन, बेसेंट नगर, चेन्नई-600009 ☐ बिहार राज्य सहकारी बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ, पटना-800004 ☐ प्रेस रोड, तिरुअनंतपुरम-695001 ☐ 27/6, राममोहन राय मार्ग, लखनऊ-226019 ☐ राज्य पुरातत्वीय संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन्स, हैदराबाद-500001 ☐ प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलौर-560034

विक्रय केंद्र ● पत्र सूचना कार्यालय

☐ सी.जी.ओ. काम्पलैक्स, 'ए' विंग, ए.बी. रोड, इंदौर (म.प्र.) ☐ 80, मालवीय नगर, भोपाल-462003 ☐ के-21, नन्द निकेतन, मालवीय मार्ग, 'सी' स्कीम, जयपुर-302001

ग्रामीण गरीबी : समस्या और समाधान

डा. गौरीशंकर राजहंस*

गांव की गरीबी के बारे में चर्चा करते हुए ऐसा लगता है मानो अपना देश दो भागों में बंटा हुआ है। एक को 'इंडिया' कहते हैं और दूसरे को 'भारत'। इंडिया उसे कहते हैं जो शहरों में है, जहां बेशुमार दौलत है। शादी-ब्याह और दिखावे पर लोग लाखों-करोड़ों रुपये खर्च करते हैं। 'भारत' उसे कहते हैं जहां गरीबी की रेखा से नीचे के 40 प्रतिशत लोग रहते हैं जिन्हें साल भर दो जून की रोटी भी नहीं मिल पाती है। अपने देश के दो स्वरूपों को देखकर घोर दुख और आश्चर्य होता है कि आखिर इस असमानता का, गरीबों की इस बदहाली का कारण क्या है? इस बारे में अंतर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन और भारत सरकार द्वारा अनेक अध्ययन किए गए हैं और प्रत्येक अध्ययन का निष्कर्ष दूसरे से अलग है। यू.एन.डी.पी. की 1997 की रिपोर्ट के अनुसार ग्रामीण भारत में लोगों की गरीबी का एक मुख्य कारण है कि उन्हें खाने के लिए पौष्टिक आहार नहीं मिलता और कुल आबादी का 20 प्रतिशत भाग 40 वर्ष की उम्र होते-होते अकाल मृत्यु को प्राप्त हो जाता है जबकि चीन, श्रीलंका, थाईलैंड, मैक्सिको, क्यूबा और चिली में यह प्रतिशत 10 से भी कम है। ये सभी देश अर्द्ध-विकसित या विकासशील हैं। भारत और चीन को करीब-करीब एक साथ ही आजादी मिली। फिर क्या कारण था कि आर्थिक विकास में चीन हमसे इतना अधिक आगे बढ़ गया?

गरीबी के कारण

निरक्षरता : ग्रामीण और शहरी गरीबी—दोनों का एक मुख्य कारण निरक्षरता है। प्राप्त आंकड़ों के अनुसार भारत में ग्रामीण क्षेत्रों में निरक्षर लोगों का प्रतिशत 48 से ऊपर है जबकि वियतनाम, श्रीलंका और थाईलैंड जैसे अर्द्ध-विकसित देशों में उनकी संख्या 10 प्रतिशत से कम है। सबसे अधिक दुखद बात यह है कि निरक्षर लोगों में महिलाओं की संख्या पुरुषों की तुलना में बहुत अधिक है। अपने देश में 63 9 प्रतिशत वयस्क महिलाएं निरक्षर हैं जबकि 35.5 प्रतिशत वयस्क पुरुष निरक्षर हैं। चाहे शहर हो या देहात, यदि लोग अशिक्षित होंगे तो वे समझ ही नहीं पाएंगे कि उनकी हालत में सुधार कैसे हो सकता है।

बढ़ती जनसंख्या : ग्रामीण गरीबी का एक बहुत बड़ा कारण बढ़ती हुई जनसंख्या है। चीन जैसे देश में सरकार ने लोगों को समझा-बुझाकर और थोड़ी-सी सख्ती बरत कर जनसंख्या पर नियंत्रण पा लिया। सरकार ने इसके लिए सबसे पहले चीन के ग्रामीण क्षेत्र के लोगों को शिक्षित करना शुरू किया और उन्हें समझाया कि यदि उन्होंने परिवार नियोजन नहीं किया तो वे सभी बरबाद हो जाएंगे, देश बरबाद हो जाएगा और एक बार फिर चीन पहले की तरह गुलाम बन जाएगा। शिक्षा का व्यापक प्रचार होने के कारण लोगों ने सरकार की सलाह पर ध्यान दिया। इसका फल यह हुआ कि पूरे चीन में लोगों ने एक परिवार में एक बच्चे का आंदोलन चलाया और एक बच्चे के जन्म के बाद ही पति-पत्नी दोनों की नसबंदी कर दी गई। पूरे चीन में किसी ने इसका विरोध नहीं किया। शिक्षा का व्यापक प्रचार होने के कारण लोगों को यह बात समझ में आने लगी कि जनसंख्या जितनी बढ़ेगी, गरीबी उतनी ही बढ़ेगी।

भारत में दुर्भाग्यवश आजादी के बाद जनसंख्या नियंत्रण पर कभी पूरा जोर नहीं दिया गया। 1975 से 1977 तक आपातकाल के दौरान इस समस्या को गंभीरता से जरूर लिया गया था। परंतु आपातकाल के दौरान जबरन नसबंदी के नाम पर बहुत जोर-जुल्म हुआ जिसके कारण बाद में आने वाली किसी भी सरकार की यह हिम्मत नहीं हुई कि वह लोगों से परिवार नियोजन करने का आग्रह करे या लोगों को यह बताए कि यदि परिवार बढ़ेगा तो उनकी गरीबी भी बढ़ेगी। नतीजा यह हुआ कि भारत की जनसंख्या में, खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में, बेशुमार बढ़ोतरी हुई। ऐसी हालत में गरीबी का बढ़ना स्वाभाविक ही था क्योंकि जमीन तो सीमित थी और ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार के अवसर और अधिक सीमित थे। जो लोग रोजगार की तलाश में शहरों में आए, उन्हें भी घोर निराशा हुई। शहरों में रह कर भी वे परिवार नियोजन नहीं अपना सके और झुग्गी-झोपड़ियों में रह कर जानवरों जैसा जीवन बिताने लगे।

महिलाओं में अशिक्षा : इस समस्या की जड़ में अशिक्षा है। अधिकतर भारतीयों की यह गलत धारणा है कि बच्चे भगवान दी देन हैं। शिक्षा के अभाव में वे समझ ही नहीं पाते कि बढ़ती हुई जनसंख्या के कारण उनकी गरीबी भी तेजी से बढ़ रही है। परिवार को सीमित करना उनके हाथ में है, इसमें तकदीर या भगवान कहीं नहीं आते। परिवार को बढ़ाने से गरीबी अपने आप आमंत्रित होती चली आएगी।

परिवार नियोजन में शिक्षा का कितना बड़ा योगदान है, वह इसी बात से स्पष्ट है कि केरल और कर्नाटक जैसे दक्षिण भारत के राज्यों में जहां शिक्षा का भरपूर प्रचार है और शिक्षित लोगों में महिलाओं की संख्या अधिक है, वहां जनसंख्या पर बहुत हद तक नियंत्रण पा लिया गया है। जनसंख्या को नियंत्रित करने का सबसे कारगर उपाय है—महिलाओं को शिक्षित करना। केवल शिक्षित महिलाएं ही कह सकती हैं कि वे मात्र बच्चा पैदा करने की मशीन नहीं हैं, परिवार बढ़ेगा अथवा सीमित रहेगा—

* पूर्व सांसद और पूर्व राजदूत

इसमें उनकी सहमति भी उतनी ही आवश्यक है, जितनी मर्दों की। यह अत्यंत दुर्भाग्य की बात है कि आजादी के पचास वर्ष बाद भी किसी ने ग्रामीण क्षेत्रों की महिलाओं को शिक्षित करने का प्रयास नहीं किया। नतीजा यह हुआ कि भारत की आबादी तेजी से बढ़ी और अधिकृत अध्ययनों के अनुसार सन् 2020 तक भारत की आबादी चीन से भी ज्यादा बढ़ जाएगी। वह दिन सचमुच हमारे देश के लिए बहुत दुर्भाग्य का दिन होगा क्योंकि साधन सीमित रहेंगे और आबादी बेतहाशा बढ़ जाएगी। ऐसी हालत में समाज में अराजकता का फैलना स्वाभाविक है।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) की 1997 की रिपोर्ट में कहा गया है कि दुनिया में कुल 78 देश गरीब हैं और गरीब देशों में भारत का स्थान 47वां है। इस रिपोर्ट से एक बात तो स्पष्ट है कि भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी दूर करने के जो भी प्रयास किए गए, उनमें से अधिकतर विफल हो गए। इस रिपोर्ट में कहा गया है कि चीन, श्रीलंका, क्यूबा और वियतनाम जैसे गरीब देशों ने ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी हटाओ के कार्यक्रमों में भरपूर सफलता पाई है। अभी भी समय है कि भारत इन देशों में किए गए प्रयासों से सबक सीखे।

भूमि सुधारों का न हो पाना : इसमें कोई संदेह नहीं कि ग्रामीण क्षेत्रों में व्याप्त भयानक गरीबी का मुख्य कारण अभी भी वहां प्रचलित सामंतवादी रवैया है। आजादी के बाद बहुत कम राज्यों में सही ढंग से भूमि सुधार किए गए। अभी भी बिहार और उत्तर प्रदेश जैसे राज्यों में राजनेताओं के पास हजारों एकड़ बेनामी जमीन है। किसी भी सरकार की यह हिम्मत नहीं है कि उस बेनामी जमीन पर कब्जा करे और उसे गरीबों में बंटवाए। यहां तक कि भूदान में भी जिन भूमिहीनों को जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े दिए गए, उन्हें भी पूर्व जमींदारों और बड़े किसानों ने जबरन हड़प लिया। इसका नतीजा यह हुआ कि ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीन मजदूरों की संख्या दिनोंदिन बढ़ती गई। यह बात किसी से छिपी नहीं है कि इन मजदूरों को मजदूरी के नाम पर नाममात्र का अनाज मिलता है जिससे कोई मजदूर अपने परिवार का पेट नहीं पाल सकता। यही कारण है कि इन राज्यों से बड़ी मात्रा में भूमिहीन खेतिहर मजदूर अपने गांव से भागकर रोजी-रोटी की तलाश में पंजाब, हरियाणा और दिल्ली आते हैं। इन राज्यों में इनका भरपूर शोषण होता है और साल भर मजदूरी करने के बाद जब ये मजदूर बिहार और उत्तर प्रदेश में अपने गांवों को लौटते हैं, उस समय उनकी दशा देखने लायक होती है। अधिकतर मजदूरों को चाय में अफीम पिलाकर दिन-रात मजदूरी करने के लिए बाध्य किया जाता है। इस तरह साल भर के अंदर ही उनका स्वास्थ्य इतना गिर जाता है कि घर लौटकर सारी कमाई उन्हें अपने उपचार में ही लगानी पड़ती है। इस तरह उनकी गरीबी यथावत बनी रहती है और शायद बढ़ ही जाती है।

आजादी के बाद देश में भूमि सुधार का बड़ा शोर हुआ। यह सर्वविदित है कि बिहार और उत्तर प्रदेश में सामंतवादियों ने 'लैंड सिलींग एक्ट' को ठेंगा दिखा दिया और हजारों एकड़ बेनामी जमीन अपने पास रख ली। परंतु इस मामले में पंजाब और हरियाणा के बड़े किसान, जिन्हें वहां 'जमींदार' कहा जाता है, पीछे नहीं हैं। वहां भी हर 'जमींदार' के पास सैकड़ों एकड़ जमीन है। वहां की जमीन भी बहुत उपजाऊ है। सभी को आश्चर्य होता है कि आखिर इन जमींदारों पर 'लैंड सिलिंग' कानून क्यों लागू नहीं होता? दूसरी बात यह है कि चाहे वह बिहार हो या उत्तर प्रदेश, चाहे पंजाब या हरियाणा—पूरे देश में कृषि आय पर कोई टैक्स नहीं लगता। इस तरह अमीर जमींदार तथा किसान और अधिक अमीर होते जाते हैं तथा भूमिहीन खेतिहर मजदूर और गरीब होते जाते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में अमीरों और गरीबों के बीच की यह खाई दिनोंदिन बढ़ रही है और किसी भी सरकार ने इस खाई को पाटने का समुचित प्रयास नहीं किया है। प्राप्त संकेतों से तो ऐसा लगता है कि आने वाले दिनों में यह खाई और भी चौड़ी होगी।

मशीनें और टेक्नालाजी : तथाकथित 'हरित क्रांति' के कारण अधिकतर राज्यों में खेती मशीनों से की जाने लगी। हल-बैल की जगह ट्रैक्टर आए। बैलगाड़ियों का स्थान ट्रक ने ले लिया। कुंएं खोद कर मजदूरों की मदद से सिंचाई का पानी निकालने की जगह, मशीनों की मदद से बड़े-बड़े ट्यूबवैल खोदे गए और बिजली या डीजल के पंपसेटों की मदद से उनसे पानी निकाल कर सिंचाई की गई। इसका परिणाम यह हुआ कि पानी का स्तर तो नीचे चला ही गया, इन सभी कामों में जो मजदूर लगे थे उनकी भी छुट्टी हो गई। या तो वे ग्रामीण क्षेत्रों में रह कर घोर गरीबी में जीवन जीने के लिए अभिशप्त हो गए या शहरों में पलायन कर झुग्गी-झोपड़ियों में रह कर या सड़क के किनारे जीवन व्यतीत कर जानवरों से भी बदतर जीवन बिताने लगे। एक बात और। कृषि के क्षेत्र में मशीनों के उपयोग से और नई टेक्नालाजी की मदद के कारण जो ग्रामीण महिलाएं खेती के काम में व्यस्त रहती थीं, वे भी खाली हो गईं। इस तरह पुरुष और महिलाएं दोनों बेरोजगार हो गए और उनकी गरीबी बढ़ती ही गई जबकि जमींदारों और बड़े किसानों की आमदनी दिन-दूनी और रात चौगुनी बढ़ गई।

कृषि के क्षेत्र में मशीनों के उपयोग से और नई टेक्नालाजी की मदद के कारण जो ग्रामीण महिलाएं खेती के काम में व्यस्त रहती थीं, वे भी खाली हो गईं। इस तरह पुरुष और महिलाएं दोनों बेरोजगार हो गए और उनकी गरीबी बढ़ती ही गई जबकि जमींदारों और बड़े किसानों की आमदनी दिन-दूनी और रात चौगुनी बढ़ गई।

एक और महत्वपूर्ण बात इस सिलसिले में यह हुई कि गांवों में जो पैसे वाले बड़े जमींदार और बड़े किसान थे, उनकी राजनीतिक औकात भी बढ़ गई और उन्होंने सरकार को बाध्य किया कि अनाज के दाम और बढ़ाए जाएं जबकि खेती में लगे हुए मजदूरों की मजदूरी दिनोंदिन कम होती गई। अत: स्वाभाविक था कि ग्रामीण क्षेत्रों में पिछले पचास वर्षों में गरीबी तेजी से बढ़ी।

उपाय

इसमें कोई संदेह नहीं कि पिछले पचास वर्षों में केन्द्र सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी दूर करने और रोजगार के अवसर बढ़ाने के कई

उपाय किए। यदि इन उपायों का निष्पक्ष सर्वेक्षण किया जाए तो ऐसा लगेगा कि इनमें से अधिकतर योजनाएं पूरी तरह सफल नहीं रहीं। गरीबी दूर करने के लिए 1978-79 में पूरे देश में 2,300 प्रखंडों को चुना गया और कहा गया कि वहां समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम (आई.आर.डी.पी.) लागू किया जाएगा। दूसरे शब्दों में, इन प्रखंडों के अंतर्गत आने वाले सारे गांवों में संपूर्ण ग्रामीण विकास की योजनाएं चलाई जाएंगी। छठी पंचवर्षीय योजना में पूरे देश में आई.आर.डी.पी. कार्यक्रम चालू किया गया। छठी पंचवर्षीय योजना के दौरान ही राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम (एन.आर.ई.पी.) चालू किया गया जिसका मकसद था—ग्रामीण क्षेत्र के उन लोगों की आर्थिक सहायता करना जो ऐसे महीनों में बेरोजगार पड़े रहते थे जबकि खेती-बाड़ी का कोई काम नहीं होता। 15 अगस्त 1983 को राष्ट्रीय ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम (आर.एल.ई.जी.पी.) पूरे देश में यह सोच कर लागू किया गया कि ग्रामीण क्षेत्रों में जो भूमिहीन हैं, उन्हें रोजगार के अवसर मिलेंगे। अनुभव के आधार पर सरकार ने पाया कि न तो 'एन.आर.ई.पी.' और न 'आर.एल.ई.जी.पी.' योजनाएं, ग्रामीण क्षेत्रों में भूमिहीनों को रोजगार देने में कामयाब साबित हो रही हैं। इसीलिए पहली अप्रैल 1989 को इन दोनों योजनाओं को मिला कर नई योजना शुरू की गई और उसका नाम 'जवाहर रोजगार योजना' रखा गया । इस योजना के अंतर्गत यह प्रयास किया गया कि भूमिहीनों और छोटे किसानों को आर्थिक सहायता दी जाए जिससे वे अपनी आवश्यकता के अनुसार हल-बैल खरीद सकें, भैंस खरीद सकें, खेती के छोटे-छोटे औजार खरीद सकें और कुटीर उद्योगों को लगा सकें। इस योजना के पीछे मूल उद्देश्य यह था कि भूमिहीन छोटे किसान या मजदूर सरकार के भरोसे या बड़े किसानों के भरोसे न रह कर अपने पैरों पर खड़े होकर खेती-बाड़ी कर सकें या 'डेयरी' के लिए पशुपालन कर सकें। या कोई दूसरा छोटा-मोटा रोजगार या दुकानदारी आदि कर सकें जिससे परिवार के लोगों को कम-से-कम दो जून की रोटी मिल सके।

सारी समस्याओं का समाधान एक ही है और वह यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के नाम पर जो पैसा खर्च होता है, उसमें पारदर्शिता लाई जाए। गांव के हर व्यक्ति को यह अधिकार हो कि वह इस बात को जान सके कि उसके गांव में विकास पर जो खर्च किया गया है या अभी किया जा रहा है, वह किस प्रकार हो रहा है और उसका लाभ किसे मिल रहा है?

पूर्व प्रधानमंत्री स्वर्गीय राजीव गांधी ने एक बार संसद में कहा था कि 'आई.आर.डी.पी.', 'आर.एल.ई.जी.पी' या 'जवाहर रोजगार योजना' के अंतर्गत जो पैसा केन्द्र से गरीब और भूमिहीन मजदूरों के लिए भेजा जाता है, उसका दसवां भाग ही इन गांवों में रहने वाले गरीब लोगों के पास पहुंच पाता है। नब्बे प्रतिशत पैसा बिचौलिए उड़ा ले जाते हैं। ऐसी हालत में यह उम्मीद कैसे की जा सकती है कि इन योजनाओं का लाभ गांवों के गरीब तबके तक पहुंचा होगा?

ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की गरीबी दूर करने के लिए जो योजनाएं चलाई गईं, उनके विफल होने के और भी कई कारण हैं। सबसे बड़ी बात तो यह थी कि देश के हर प्रखंड के लिए एक-समान धन दिया गया। यह सोचा ही नहीं गया कि किस प्रखंड में कितनी जनसंख्या है और किस प्रखंड के लोगों की गरीबी कितनी भयावह है। इसका परिणाम यह हुआ कि जिन लोगों को इस तरह की आर्थिक सहायता मिलनी चाहिए थी, वे तो इस सहायता से वंचित रह गए और जो संपन्न थे, उन्होंने धोखाधड़ी से इससे लाभ उठा लिया।

इस योजना में पशुपालन पर अधिक बल दिया गया। इसमें बेईमानी भी भरपूर हुई। सरकारी कर्मचारियों और दलालों की मदद से कुछ स्वार्थी तत्वों ने एक ही भैंस या एक जोड़े बैल को ही कई बार दिखा दिया और उसके बदले ऋण या सहायता प्राप्त कर ली।

इन योजनाओं में यह प्रावधान था कि देश के 82 प्रतिशत गरीब परिवारों को यह सुविधा मिलेगी। हर परिवार में से कम-से-कम एक व्यक्ति को साल में सौ दिन तक रोजगार मिल सकेगा जिससे कम-से-कम परिवार की रोटी किसी प्रकार चल जाए। परंतु हाल के अध्ययनों से यह पता चलता है कि 5 प्रतिशत लोगों को ही सौ दिन का रोजगार मिल सका। योजना आयोग द्वारा इस कार्यक्रम का मूल्यांकन किया जा रहा है।

ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों की गरीबी दूर करने के प्रयासों पर जब हम नजर डालते हैं तो घोर निराशा होती है। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि केन्द्र सरकार ने अरबों रुपये गरीबों और भूमिहीनों की दशा सुधारने के लिए राज्य सरकारों को भेजे। परंतु अधिकतर राशि सरकारी अफसरों और दलालों ने मिलकर खा ली। गरीबों को केवल गरीबी ही मिली, और कुछ नहीं। उदाहरण के लिए पिछले पचास वर्षों में पूरे देश के ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को स्वच्छ पेयजल प्राप्त कराने के लिए सरकार ने अरबों रुपये खर्च किए। परंतु आजादी के पचास वर्ष बाद भी हम एक औसत भारतीय को एक गिलास शुद्ध पीने का पानी नहीं दे सकते। आखिर इन सारी योजनाओं का पैसा कहां गया? सरकार ने दोषी लोगों को क्यों नहीं दंडित किया?

मूल प्रश्न यह है कि जब रक्षक ही भक्षक हो जाए तो लोग न्याय मांगने कहां जाएंगे? आज उत्तर भारत के अधिकतर गांवों में एक ही दृश्य हर जगह देखने को मिलता है। एक ही तालाब में जानवर भी नहलाए जाते हैं, पुरुष और महिलाएं भी नहाती हैं। लोग शौच भी उन्हीं तालाबों में करते हैं और उसी तालाब का पानी पीने के लिए अपने घर भी ले जाते हैं। इस भयावह स्थिति के लिए कौन जिम्मेदार है? इस दूषित पानी को पीने से कभी-कभी पूरा गांव बीमार हो जाता है। दोषी लोगों को दंडित क्यों नहीं किया जाता जिन्होंने लोगों को पीने के लिए स्वच्छ पानी भी नहीं दिया?

विदेशों में, खासकर अविकसित या अर्द्ध-विकसित देशों में, जहां-जहां गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रम अपनाए गए, वहां यह प्रयास किया गया कि गांव में रहने वाले लोगों को पौष्टिक भोजन मिले, सामाजिक सुरक्षा मिले, अच्छी शिक्षा मिले और उनकी आर्थिक हालत ऐसी हो जाए कि गांव में रहकर ही वे अपनी सभी जरूरतें पूरी कर सकें। रोजगार की तलाश में उन्हें शहरों में न भटकना पड़े। दुर्भाग्यवश हमारे देश में ऐसा

कुछ नहीं हो पाया जिसका परिणाम है कि ग्रामीण क्षेत्रों के अधिकतर लोग गरीब ही रह गए।

अन्य देशों में ग्रामीण क्षेत्रों में विकलांगों, बीमार और कमजोर वर्ग के लोगों को भरपूर आर्थिक सहायता दी जाती है क्योंकि यह माना जाता है कि अपने बल पर वे इतना धन नहीं कमा सकेंगे कि अपने परिवार का भरण-पोषण कर सकें। अत: सरकार और समाज का यह दायित्व है कि उन्हें आर्थिक सहायता दी जाए। हमारे देश में इस तरह की भावना का अभाव है। हमारे देश में एक और विचित्र बात हुई कि महिलाओं के साथ आमदनी के वितरण के मामले में घोर अन्याय किया गया। किसी पिता के मरने पर संपत्ति का हकदार उसके पुत्र होते हैं। लड़कियां चाहे कितनी भी गरीब हों और कितनी ही लाचार अवस्था में जीवन बिता रही हों, समाज या सरकार उन्हें न्याय नहीं दिला पाते और उनकी स्थिति अत्यंत दयनीय बनी रहती है।

शिक्षा का असर परिवार नियोजन और बढ़ती जनसंख्या को रोकने पर तो पड़ता ही है। साथ ही लोगों की आर्थिक स्थिति को सुधारने पर भी पड़ता है। उदाहरण के लिए, कहने को तो देश में हर 5 किलोमीटर पर एक प्राथमिक स्कूल है। परंतु अधिकतर ग्रामीण इलाकों में स्कूलों की इमारत के नाम पर कुछ नहीं है। बच्चे खुले आसमान के नीचे या पेड़ों के नीचे पढ़ने को मजबूर हैं। यही नहीं, सरकारी अधिकारियों की मिली-भगत से कहीं-कहीं तो स्कूल केवल कागज पर ही रहते हैं। सबसे खराब स्थिति तो छात्राओं की शिक्षा के मामले में है। उनके लिए अलग से न तो कोई स्कूल होता है और न कोई छात्रावास। लाचार होकर अधिकतर गांवों में लड़कियां अशिक्षित रह जाती हैं। हमारे संविधान में यह प्रावधान है कि देश के हर नागरिक को समान अवसर दिए जाएंगे। परंतु सच्चाई को देखने से ऐसा लगता है कि संविधान के इस प्रावधान की ग्रामीण क्षेत्रों में खिल्ली उड़ाई जाती है। दो समान प्रतिभा की लड़कियां जिनमें एक शहर में रहती हैं और दूसरी गांव में। शहर की लड़की को भरपूर अवसर मिलता है, वह अच्छी शिक्षा प्राप्त कर बड़े से बड़े ओहदे पर पहुंच जाती है जबकि ग्रामीण क्षेत्र की लड़की अवसर के अभाव में अशिक्षित रह कर घरों में दयनीय जीवन बिताने के लिए अभिशप्त रहती है।

पिछले पचास वर्षों के ग्रामीण क्षेत्रों के विकास पर पूरी निष्पक्षता से दृष्टिपात करने से ऐसा लगता है कि निहित स्वार्थी लोगों ने भारत की ग्रामीण जनता के साथ बहुत धोखा किया है।

एक बात और है। यदि ग्रामीण क्षेत्रों में लोगों को रोजी-रोटी नहीं मिलेगी, रोजगार के अवसर नहीं मिलेंगे तो स्वाभाविक है कि वे लाचार होकर शहरों की ओर भागेंगे। इसका सीधा परिणाम यह होगा कि शहरों में भी गरीबी बढ़ेगी और रोजगार के अवसर कम होंगे। यही नहीं, जिस बात का सबसे अधिक डर है, वह यह कि ये भूखे-नंगे लोग जिस दिन एक-जुट होकर शहरों में अपने हक की मांग करेंगे, उस दिन स्थिति बड़ी भयावह हो जाएगी और वह दिन बहुत दूर नहीं है।

समाधान

सारी समस्याओं का समाधान एक ही है और वह यह है कि ग्रामीण क्षेत्रों में विकास के नाम पर जो पैसा खर्च होता है, उसमें पारदर्शिता लाई जाए। गांव के हर व्यक्ति को यह अधिकार हो कि वह इस बात को जान सके कि उसके गांव में विकास पर जो खर्च किया गया है या अभी किया जा रहा है, वह किस प्रकार हो रहा है और उसका लाभ किसे मिल रहा है? एक बार सरकारी कामों में पारदर्शिता आ जाने से सारी समस्याएं अपने आप सुलझ जाएंगी।

इसके अतिरिक्त सरकार को चाहिए कि वह जल्द से जल्द सूचना के अधिकार को मौलिक अधिकार में शामिल करे जिससे देश का कोई भी व्यक्ति किसी भी गांव या शहर में जाकर सरकारी कर्मचारियों से पूछ सके कि विकास का पैसा कब, कहां और किस प्रकार खर्च हुआ।

अंत में, पचास वर्षों के ग्रामीण विकास के इतिहास को देखने से घोर निराशा होती है और यही लगता है कि गांव के गरीब और असहाय लोगों के साथ न्याय नहीं हो पाया है। यदि इस मामले में अविलंब सुधार नहीं किया गया तो स्थिति काबू से बाहर हो जाएगी और पूरे देश को इसका मूल्य चुकाना पड़ेगा। ❑

लक्ष्य पूरा उद्देश्य अधूरा

की विडंबना से मुक्ति जरूरी

उपेन्द्र प्रसाद *

बाजार आधारित आर्थिक सुधार कार्यक्रमों के कुछ खतरों में से एक खतरा कमजोर वर्ग के लोगों का बाजार के हाशिए से बाहर हो जाने का भी है। यह खतरा काल्पनिक नहीं, वास्तविक है। यह सच है कि देश के संसाधनों के समुचित उपयोग की दृष्टि से आर्थिक नियोजन बाजार से श्रेष्ठ उपकरण साबित होने में विफल रहा है। यही कारण है कि नेहरूवादी मिश्रित अर्थ व्यवस्था का रूप अब बदल चुका है। नेहरूवादी मिश्रित अर्थ व्यवस्था में आर्थिक नियोजन को महत्वपूर्ण भूमिका निभानी थी लेकिन भारत की वर्तमान मिश्रित अर्थ व्यवस्था में बाजार ने अग्रणी भूमिका प्राप्त कर ली है। बाजार की अदृश्य शक्तियां उनसे प्रभावित होती हैं, जिनके पास क्रय शक्ति है और क्रय शक्ति उनके पास है, जिनके पास या तो आय देने वाली संपत्ति/परिसंपत्ति है या रोजगार है। जिनके पास आय देने वाली संपत्ति/परिसंपत्ति नहीं है और रोजगार भी नहीं है, वह बाजार के लिए बेगाना है। भारत जैसे विशाल आबादी वाले देश में श्रम की बहुलता है। यहां का श्रम बाजार श्रमिकों के लिए बहुत प्रतिकूल है। श्रमिकों की आपूर्ति की तुलना में श्रमिकों की मांग बहुत कम है। इसका परिणाम मजदूरों को दो तरह से भुगतना पड़ता है—या तो वे बेरोजगार रहते हैं अथवा उन्हें मजदूरी बहुत कम मिलती है। हालांकि राज्य सरकारों ने न्यूनतम मजदूरी की दरें तय कर रखी हैं, लेकिन श्रम-बाजार में श्रम की आपूर्ति तथा मांग के बीच की चौड़ी खाई ने अनेक राज्यों में न्यूनतम मजदूरी कानूनों को बेअसर बना दिया है। देश में, खासकर देश के ग्रामीण अंचलों में, भारी बेरोजगारी का माहौल व्याप्त है तथा रोजगार पा रहे मजदूरों को सरकार द्वारा निर्धारित न्यूनतम मजदूरी मिलना भी आसान नहीं है।

भारत के गांवों की हालत बद से बदतर होती जा रही है। बिहार, उड़ीसा तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के गांवों में भगदड़ मची हुई है। बिहार के एक गांव में तो एक अखबार के प्रतिनिधि को 15 से 50 साल के बीच की उम्र का कोई आदमी ही नहीं मिला। रोजगार की तलाश में वे गांवों को छोड़कर नगरों तथा महानगरों की शरण ले रहे हैं।

ग्रामीण अंचलों में रोजगार की यह दशा आर्थिक नियोजन की प्रासंगिकता को रेखांकित करती है। सरकार ने भी इसकी आवश्यकता को स्वीकार किया है। यही कारण है कि बजट भाषणों में वित्त मंत्री ग्रामीण क्षेत्र के विकास की मद में दी गई राशि की वृद्धि का विशेष रूप से उल्लेख करते हैं। पिछले कई वर्षों से ग्रामीण क्षेत्र के विकास तथा ग्रामीणों को रोजगार प्रदान करने की योजनाएं चलाई जा रही हैं तथा आर्थिक उदारीकरण की नीतियों की घोषणाओं के बीच भी इन ग्रामीण योजनाओं से सरकार हाथ नहीं खींच रही है। सच तो यह है कि यदि बाजार आधारित आर्थिक सुधार कार्यक्रमों को सफल होना है तो देश की अधिकाधिक आबादी को बाजार के दायरे में लाना होगा। इसके लिए सरकार को नियोजित तरीके से देश की ग्रामीण आबादी को रोजगार के बेहतर अवसर उपलब्ध कराने के प्रयास जारी रखने होंगे।

भारत कृषि प्रधान देश है और यहां की कृषि मानसून पर आधारित रही है। आजादी के 50 साल के बावजूद मानसून पर भारतीय कृषि की निर्भरता समाप्त नहीं हुई है। कृषि प्रधान होने के कारण देश की पूरी अर्थ व्यवस्था ही कृषि आधारित है और कृषि के मानसून आधारित होने के कारण देश की पूरी अर्थ व्यवस्था मानसून आधारित है। यह देश के लिए कोई अच्छी स्थिति नहीं है। इस स्थिति से निजात पाने की चिंता तो हमारे नीति-निर्माता पिछले कई दशकों से प्रकट करते रहे हैं। इसके लिए योजनाएं भी बनीं। धन आबंटित किया गया लेकिन परिणाम वही—ढाक के तीन पात। ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगारी की समस्या का मानसून पर निर्भरता से बहुत संबंध है। जिस साल या जिस इलाके में मानसून विफल होता है, वहां रोजगार के अवसर भी समाप्त हो जाते हैं। मानसून यदि ज्यादा मेहरबान हो गया यानी अतिवृष्टि हो गई, तो फिर बाढ़ फसल को चौपट कर देती है और इसका खामियाजा कृषि अर्थ व्यवस्था को भुगतना पड़ता है। आज विज्ञान ने बहुत तरक्की कर ली है। टेक्नालाजी ने बड़ी ऊंचाई प्राप्त कर ली है। इसलिए बाढ़ और सुखाड़ को अब प्राकृतिक विपदाएं कहना उचित नहीं होगा, क्योंकि इन दोनों पर काबू पाने की

* सहायक सम्पादक, नवभारत टाइम्स, नई दिल्ली

ताकत आज मानव के पास है। यह सच है कि भारत एक गरीब देश है, लेकिन इसकी गरीबी प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय अथवा निरक्षरता दर में ही ज्यादा झलकती है। यदि केन्द्र सरकार तथा राज्य सरकारों के बजट को देखें, तो लगेगा कि हमारे पास इतने वित्तीय संसाधन हैं कि बाढ़ तथा सुखाड़ की समस्या से देश को हमेशा के लिए निजात दिलाई जा सकती है। पिछले 50 वर्षों में सूखे की स्थिति में सिंचाई की व्यवस्था के लिए तथा बाढ़ की स्थिति में बांध के निर्माण के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों ने जितनी राशि खर्च की है, वह कोई कम नहीं है। उतनी राशि खर्च करने के बाद अब तक इन दोनों समस्याओं पर तो काबू पा लिया जाना चाहिए था, लेकिन ये समस्याएं बरकरार हैं। इसका मतलब यह हो सकता है कि या तो योजनाएं ही गलत बनाई गई थीं अथवा धनराशि का सही उपायोग नहीं किया गया अथवा ये दोनों कारण वर्तमान हालात के लिए जिम्मेवार हैं।

भारत के गांवों की हालत बद से बदतर होती जा रही है। बिहार, उड़ीसा तथा पूर्वी उत्तर प्रदेश के गांवों में भगदड़ मची हुई है। बिहार के एक गांव में तो एक अखबार के प्रतिनिधि को 15 से 50 साल के बीच की उम्र का कोई आदमी ही नहीं मिला। रोजगार की तलाश में वे गांवों को छोड़कर नगरों तथा महानगरों की शरण ले रहे हैं। जाहिर है कि ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार सुनिश्चित कराने की योजनाएं अपने वांछित उद्देश्यों को हासिल नहीं कर पा रही हैं, हालांकि सरकारी आंकड़े बताते हैं कि अनेक योजनाओं ने अपने लक्ष्य हासिल किए हैं। यहां जवाहर रोजगार योजना का उदाहरण देना गलत नहीं होगा।

जवाहर रोजगार योजना की शुरुआत 1989 में की गई थी। इसके पहले की दो योजनाएं—राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम—आपस में मिला दी गईं और इन्हें जवाहर रोजगार योजना का नाम दे दिया गया। जवाहर रोजगार योजना ग्रामीण क्षेत्रों में चल रही एक अत्यंत महत्वाकांक्षी योजना है। इसका "प्रमुख उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्रों में बेरोजगार और अल्प रोजगार प्राप्त पुरुषों तथा महिलाओं को अतिरिक्त लाभकारी रोजगार उपलब्ध कराना है। योजना का गौण उद्देश्य टिकाऊ, सामुदायिक तथा सामाजिक परिसंपत्तियों का सृजन करना है। योजना को इस तरह बनाया गया है कि मजदूरी रोजगार का मौसम आधारित होना रोका जा सके तथा ग्रामीण क्षेत्रों में प्रचलित मजदूरी दरों पर इसका सकारात्मक प्रभाव हो। यह योजना, मजदूरी रोजगार के जरिये आय के अनुपूरक स्रोत प्रदान करने और सामुदायिक तथा सामाजिक परिसंपत्तियों के सृजन द्वारा लोगों के जीवन-स्तर में सुधार लाने में योगदान करती है" (वार्षिक रिपोर्ट 1997-98, ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार)।

जवाहर रोजगार योजना का उद्देश्य गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन कर रहे लोगों को रोजगार उपलब्ध कराना है। उनमें भी अनुसूचित जाति/जनजाति के लोगों को प्राथमिकता दी जाती है तथा कम-से-कम 30 प्रतिशत रोजगार महिलाओं को उपलब्ध कराए जाते हैं। यदि 1989 के बाद से अब तक के आंकड़े देखें, तो जवाहर रोजगार योजना को एक विफल योजना नहीं कहा जा सकता।

तालिका

(लाख श्रम दिन)

वर्ष लक्ष्य	उपलब्धि	प्रतिशत उपलब्धि
1989 90 से 1991-92	25,402.63	25,481.47	100.31
1992-93	7,537.95	7,821.02	103.76
1993-94	10,383.30	10,258.40	98.80
1994-95	9,865.45	9,517.07	96.47
1995 96	8,480.05	8,958.25	105.64
1996 97	4,141.37	4,006.32	93.24
1997-98 (मार्च 1998 तक अनंतिम)	3,864.90	3,648.30	94.40
कुल	69,675.65	69,690.83	100.02

स्रोत : वार्षिक रिपोर्ट 1997-98, ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय, भारत सरकार

तालिका से स्पष्ट है कि जवाहर रोजगार योजना ने लक्ष्य से ज्यादा सफलता हासिल की है। सकल उपलब्धि 100.02 प्रतिशत रही है। उल्लेखनीय बात यह है कि इस योजना पर जितनी धनराशि आबंटित की गई, उसके 79.07 प्रतिशत का ही उपयोग किया जा सका, जबकि लक्षित श्रम दिन से ज्यादा श्रम दिन की उपलब्धि हासिल की गई। सरकार इस उपलब्धि के लिए अपनी पीठ थपथपा सकती है, लेकिन लक्ष्य और उद्देश्य में अंतर होता है। लक्ष्य पाने के बावजूद सरकार यह दावा नहीं कर सकती कि उसने उद्देश्य हासिल कर लिया है। पहले बताया जा चुका है कि जवाहर रोजगार योजना का उद्देश्य ग्रामीण श्रमिकों को रोजगार प्रदान कर, उन्हें आय के अतिरिक्त अवसर प्रदान करना तथा इसके साथ वैकल्पिक रोजगारों में उनकी मजदूरी की शर्तें बेहतर बनाना रहा है। लेकिन तथ्य यह है कि देश के अधिकांश राज्यों के ग्रामीण क्षेत्रों में ग्रामीणों का पलायन पिछले 9-10 वर्षों में तेज हुआ है तथा ग्रामीण इलाकों में बेहतर मजदूरी प्राप्त करना अभी भी मृग-मरीचिका बनी हुई है। जवाहर रोजगार योजना का गौण उद्देश्य ग्रामीण इलाकों में उन परिसंपत्तियों का निर्माण करना रहा है जिनके कारण गांवों का त्वरित विकास होता है। सिंचाई के साधन तथा बाढ़ रोकने के लिए बांध से बेहतर परिसंपत्ति ग्रामीण इलाकों के लिए और क्या हो सकती हैं? लेकिन तथ्य यही है कि न तो बाढ़ रोकने की मुकम्मल व्यवस्था की गई है और न ही सिंचाई के समुचित इंतजाम किए जा सके हैं।

लक्ष्य पूरा करना और उद्देश्य अधूरा रह जाना, हमारी अनेक ग्रामीण योजनाओं की विडम्बना रही है। इस विडम्बना से मुक्ति पाए बिना देश के ग्रामीण क्षेत्रों का कल्याण नहीं हो सकता। विडम्बना से मुक्ति पाने का एक तरीका यह हो सकता है कि लक्ष्य को ज्यादा मूर्त्त बनाया जाए। लक्ष्य और उद्देश्य में एक अंतर यह भी होता है कि लक्ष्य जहां मूर्त्त होते हैं, वहीं उद्देश्य अमूर्त्त होते हैं। जवाहर रोजगार योजना के गौण उद्देश्य को यदि प्रमुख उद्देश्य बना दिया जाए, तो लक्ष्य ज्यादा मूर्त्त रूप लेगा। अब तक इस योजना का प्रमुख उद्देश्य रोजगार प्रदान करना रहा है जबकि गौण उद्देश्य ग्रामीण परिसंपत्ति का निर्माण। होना यह चाहिए कि परिसंपत्ति का निर्माण अब प्रमुख उद्देश्य बने तथा रोजगार सृजन गौण। तभी इस योजना के उद्देश्यों को प्राप्त किया जा सकता है। ❑

भारत में ग्रामीण विकास : आजादी के पचास वर्षों के बाद

अमर कुमार सिंह*

आजादी के पचास वर्षों की अवधि में मानव विकास के आकलनों ने एक प्रवृत्ति को रेखांकित किया है : मानव विकास में सार्थक विभिन्नताएं हैं। विकास के प्रमुख मापदंडों पर भारत लगभग तीन भागों में विभाजित हो गया है। संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यू.एन.डी.पी.) के मानव विकास सूचकांक को आधार बनाकर भारत के राज्यों को श्रेणीबद्ध किया गया है। मानव विकास सूचकांक में तीन कारक सम्मिलित हैं: जीवन प्रत्याशा, साक्षरता और आमदनी। इनके सम्मिलित अंकों के आधार पर भारत के छह राज्य उच्चतम स्थान पाते हैं—केरल, महाराष्ट्र, पंजाब, तमिलनाडु, हिमाचल प्रदेश और हरियाणा। मानव विकास सूचकांक का विस्तार 0 से 100 तक है। इन राज्यों के प्राप्तांक 50 से अधिक हैं। जिन राज्यों के प्राप्तांक 40 तक आते हैं, उन्हें निम्नतम विकास स्तर पर रखा जा सकता है। ये हैं—असम, उड़ीसा, राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश और बिहार। मध्यम मानव विकास सूचकांक (40-50) पाने वाले राज्य हैं—गुजरात, कर्नाटक, पश्चिम बंगाल और आंध्र प्रदेश।

मानव विकास सूचकांकों के बावजूद समानता

भारत के राज्यों में मानव विकास सूचकांकों में विभिन्नताएं हैं। इन विभिन्नताओं के बावजूद उनमें एक समानता है। सभी राज्यों में ग्रामीण क्षेत्रों की स्थिति शहरी क्षेत्रों की तुलना में बदतर है। गांवों में साक्षरता दर कम है, प्रजनन दर अधिक, आवास सुविधाएं कम हैं और अधिक प्रतिशत आबादी गरीबी की रेखा के नीचे है। इन मापदंडों पर हम मानव विकास के तीनों स्तरों के अंतर्गत आने वाले राज्यों की तुलना करें।

पहले साक्षरता को लें। तालिका-2 के आंकड़े प्रदर्शित करते हैं कि सभी राज्यों में शहरी क्षेत्रों में साक्षरता की दर, ग्रामीण क्षेत्रों की तुलना में

* अध्यक्ष, सामाजिक विकास परिषद्, संघ रचना, लोदी एस्टेट, नई दिल्ली

तालिका—1 : भारत में राज्यवार मानव विकास

देश/राज्य	मानव विकास सूचकांक (विस्तार 0-100 तक)
भारत	**42.79**
उच्चतम मानव विकास सूचकांक पाने वाले राज्य (50+)	
केरल	62.79
महाराष्ट्र	55.49
पंजाब	54.86
तमिलनाडु	51.11
हिमाचल प्रदेश	50.63
हरियाणा	50.56
मध्यम मानव विकास सूचकांक पाने वाले राज्य (40-50)	
गुजरात	47.82
कर्नाटक	46.83
पश्चिम बंगाल	45.37
आंध्र प्रदेश	41.28
निम्नतम मानव विकास सूचकांक पाने वाले राज्य (40 तक)	
असम	39.48
उड़ीसा	37.25
राजस्थान	37.11
मध्य प्रदेश	36.71
उत्तर प्रदेश	35.51
बिहार	34.01

स्रोत : यू.एन.एफ.पी.ए. (1997) : टूवर्ड पोपुलेशन एंड डेवलेपमेंट गोल्स, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली।

नोट : मानव विकास सूचकांक जीवन प्रत्याशा, वयस्क साक्षरता और आमदनी का सम्मिलित मापदंड है।

धिक है। केरल, जो उच्चतम मानव विकास सूचकांक प्राप्त राज्यों में र्षस्थ है, वहां शहरी आबादी से अधिक साक्षरता है। यही स्थिति हार की है, जो मानव विकास सूचकांक के आधार पर निम्नतम ज्य है। शहरी क्षेत्रों की अपेक्षाकृत अधिक साक्षरता में किसी भी ज्य में अपवाद नहीं है।

तालिका—2 : भारत में राज्यवार साक्षरता दर : ग्रामीण-शहरी तुलना (1991)

श/राज्य	ग्रामीण	शहरी
ारत	**36.2**	**61.6**
च्चतम मानव विकास वाले राज्य		
रल	77.0	80.8
हाराष्ट्र	45.4	67.0
जाब	44.1	60.6
मिलनाडु	47.1	68.3
माचल प्रदेश	51.6	72.8
रियाणा	40.1	61.0
ध्यम मानव विकास वाले राज्य		
जरात	44.0	64.7
र्नाटक	39.4	63.0
श्चिम बंगाल	41.0	66.1
ंध्र प्रदेश	29.7	56.2
म्नतम मानव विकास वाले राज्य		
ड़ीसा	37.6	61.2
जस्थान	24.1	53.3
ध्य प्रदेश	28.5	58.4
तर प्रदेश	29.1	49.8
हार	26.7	56.0

ोत : यू.एन.एफ.पी.ए. (1997) : पूर्ववत।

दूसरा उदाहरण स्वास्थ्य और जनसंख्या के क्षेत्र से लें। शिशु मृत्यु-दर वास्थ्य का एक संवेदनशील सूचक है। 1971 से लेकर 1995 के आंकड़े ताते हैं कि ग्रामीण क्षेत्रों में शहरी क्षेत्रों की तुलना में, बाल मृत्यु-दर धिक है। ये आंकड़े बताते हैं कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिशु त्यु दर कम हुई है (तालिका-3)। 1971 में ग्रामीण शिशु मृत्यु दर

तालिका—3 : भारत में शिशु मृत्यु दर : ग्रामीण-शहरी तुलना (1971-1995)

र्ष	ग्रामीण	शहरी
971	138	82
981	119	62
991	87	53
995*	80	52

अंतरिम

ोत : सेंट्रल स्टैटिस्टिकल आर्गेनाइजेशन (1995) : सलेक्टेड सोशियो-इकोनोमिक टैटिस्टिक्स इन इंडिया, भारत सरकार, नई दिल्ली।

138 थी, जो घटकर 1985 में 80 हो गई। शहरी क्षेत्रों में भी 1971 (82) की तुलना में 1995 में काफी कमी आई है। ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की खाई बनी हुई है, यद्यपि यह कुछ कम हुई है। 1971 में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों के शिशु मृत्यु दरों का अंतर 56 था, जो 1995 में कम होकर 28 हो गया।

जनसंख्या संबंधी दो और कारकों को लें जो महिलाओं और उनके बच्चों के स्वास्थ्य को कुप्रभावित करते हैं। ये कारक हैं—दो बच्चों के बीच अंतराल की कमी और चार से अधिक प्रसव। 1990 में 24 महीने से कम अंतराल का प्रतिशत ग्रामीण क्षेत्र में (38.5) और शहरी क्षेत्र में (38 प्रतिशत), लगभग एक जैसा था। लेकिन 1993 में शहरी क्षेत्रों में यह प्रतिशत घटकर 24.0 हो गया। ग्रामीण क्षेत्र में बहुत मामूली कमी आई—38.5 से 37.4 । चार से अधिक बच्चों के प्रसव में 1984 और 1993 की अवधि में ग्रामीण और शहरी दोनों में कमी आई है, लेकिन दोनों के बीच खाई बनी हुई है (तालिका-4)।

तालिका—4 : 24 महीने के अंतराल से कम और चार से अधिक बच्चों का प्रसव

	ग्रामीण	शहरी
24 महीनों से कम अंतराल में प्रसव		
1990	38.5	38.7
1993	37.4	24.0
चार से अधिक बच्चों का प्रसव		
1984	34.6	23.7
1993	24.3	19.2

स्रोत : यू.एन.एफ.पी.ए. (1997), पूर्ववत, तालिका डी.-3, 4, 5, 6, पृ. 136-138

एक और उदाहरण लें, प्रजनन दर का। सभी राज्यों में ग्रामीण प्रजनन दर, शहरी क्षेत्रों की तुलना में अधिक है। भारत में ग्रामीण प्रजनन दर 3.67 और शहरी 2.70 है। केरल में शहरी प्रजनन दर, ग्रामीण प्रजनन दर से कम है लेकिन शहरी और ग्रामीण प्रजनन दर दोनों ही प्रजनन स्थान्नापन दर (2.1) से कम है। बिहार में शहरी (3.25) और ग्रामीण (4.15) क्षेत्रों में प्रजनन दर, स्थान्नापन दर से अधिक है। यही स्थिति लगभग सभी राज्यों की है (तालिका-5)।

साक्षरता, जनसंख्या, स्वास्थ्य के बाद अब जीवन-स्तर को लें। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की रेखा से नीचे गुजर-बसर करने वाले लोगों का प्रतिशत, शहरी क्षेत्रों की तुलना में 1973-74 से लेकर 1993-94 तक, लगातार अधिक रहा है (तालिका-6)। 1973-74 में 56.44 प्रतिशत ग्रामीण जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे थी। यह प्रतिशत घटकर 1993-94 में 37.27 हो गया। शहरी क्षेत्रों में 49 प्रतिशत जनसंख्या 1973-74 में गरीबी की रेखा से नीचे थी। यह प्रतिशत घटकर 1993-94 में 32.36 तक पहुंच गया। यद्यपि गांवों और शहरों में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाली आबादी में कमी आई है, लेकिन गांवों और शहरों के बीच की खाई बनी हुई है (तालिका-6)।

तालिका—5 : भारत में राज्यवार प्रजनन दर : ग्रामीण-शहरी तुलना (1992-93)

देश/राज्य	ग्रामीण	शहरी
भारत	3.67	2.70
उच्चतम मानव विकास वाले राज्य		
केरल	2.09	1.78
महाराष्ट्र	3.12	2.54
पंजाब	3.09	2.48
तमिलनाडु	2.54	2.36
हिमाचल प्रदेश	3.07	2.03
हरियाणा	4.32	3.14
मध्यम मानव विकास वाले राज्य		
गुजरात	3.17	2.65
कर्नाटक	3.09	2.39
पश्चिम बंगाल	3.25	2.14
आंध्र प्रदेश	2.67	2.35
निम्नतम मानव विकास वाले राज्य		
असम	3.68	2.53
उड़ीसा	3.0	2.53
राजस्थान	3.87	2.77
मध्य प्रदेश	4.11	3.27
उत्तर प्रदेश	5.19	3.58
बिहार	4.15	3.25

स्रोत : गनदोत्रा एम.एम., रेयरफोर्ड आर.डी. पांडेय अरविंद, लूथर एन.वाई. मिश्रा (1998) : फरटिलिटी इन इंडिया, इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फार पापुलेशन सांइसेज, मुंबई।

तालिका 6 : गरीबी रेखा के नीचे भारत की जनसंख्या : ग्रामीण-शहरी तुलना (1973-74—1993-94)

वर्ष	ग्रामीण	शहरी
1973-74	56.44	49.01
1977-78	53.07	45.25
1983-84	45.65	40.79
1987-88	39.09	38.20
1993-94	37.27	32.36

स्रोत : सेंट्रल स्टैटिस्टिकल आर्गेनाइजेशन (1998)।

अब घर में उपलब्ध पेयजल, रोशनी और शौचालय की सुविधाओं को लें। 1973-74 और 1988-89 के संबंधित आंकड़े (तालिका-7) में दर्ज हैं। सभी सुविधाओं में ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में सुधार हुए हैं। 1973-74 में 4.69 प्रतिशत गांवों में पेयजल उपलब्ध था, 1988-89 में यह बढ़कर 15.47 प्रतिशत हो गया। इस अवधि में ट्यूबवेल/हैंडपंप की उपलब्धि 15.59 से बढ़कर 39.10 हो गई है। 1988-89 में बिजली मात्र 27.04 प्रतिशत गांवों को उपलब्ध थी, जबकि शहरों में 69 प्रतिशत बिजली थी। 1988-89 में 89.25 प्रतिशत गांवों में शौचालय की कोई भी सुविधा नहीं थी।

तालिका 7 : आवास सुविधाएं : ग्रामीण-शहरी तुलना (1973-74) और (1988-89)

सुविधाएं	1973-74		1988-89	
	ग्रामीण	शहरी	ग्रामीण	शहरी
पेयजल				
नल	4.69	66.97	15.47	72.11
कुंआ	65.84	18.05	39.12	9.17
ट्यूबवेल/हैंडपंप	15.59	12.69	39.10	17.20
नदी, झील, तालाब, नहर	4.50	0.76	2.19	0.28
अन्य	1.16	0.58	1.70	0.92
प्रकाश				
मिट्टी का तेल	91.67	45.99	69.17	22.63
बिजली	6.55	53.48	27.04	74.38
अन्य	1.73	0.41	0.45	0.23
शौचालय				
फ्लश	0.48	20.08	1.06	26.98
टैंक प्रणाली	1.73	13.92	3.70	25.87
सर्विस	2.50	30.25	1.62	11.75
अन्य प्रकार	2.28	2.26	4.37	4.29
कुछ भी नहीं	92.40	3.01	89.25	31.11

स्रोत : सेंट्रल स्टैटिस्टिकल आर्गेनाइजेशन (1995)।

ग्रामीण विकास की असफलता के मुख्य कारण

ग्रामीण विकास न होने का पहला कारण सत्ताधारी वर्ग द्वारा उपेक्षा है। चुनाव तो अवश्य ग्रामीण वोटों के आधार पर जीते जाते हैं, लेकिन उसके बाद ग्रामीण विकास के लिए दिए गए आश्वासन भुला दिए जाते हैं। गरीबी से त्रस्त ग्रामीण लोग शहरों की ओर भाग रहे हैं। परिणामस्वरूप इन लोगों की वजह से शहरों में झुग्गी-झोपड़ियों तथा स्लम बस्तियों की आबादी बढ़कर मुख्य शहर की आबादी के बराबर हो गई है। शिक्षा और स्वास्थ्य की सुविधाओं से वंचित पेशेवर लोग शहर छोड़कर गांव वापस नहीं जाना चाहते। गांवों में स्कूल हैं, तो स्कूल के लिए भवन नहीं हैं। शिक्षक हैं, तो शिक्षण सामग्री नहीं है। इसी तरह गांवों में चिकित्सा केंद्र हैं, तो डाक्टर नहीं हैं और संसाधन नहीं हैं।

रक्षा और ग्रामीण विकास पर किए गए खर्च से सरकार की प्राथमिकता को समझा जा सकता है। देश की सुरक्षा को प्राथमिकता अवश्य मिलनी चाहिए लेकिन ग्रामीण विकास को अनदेखा करना, देश को अपने लक्ष्य से ही पथभ्रष्ट कर देता है। 1990-91 से लेकर 1998-99 तक भारत सरकार द्वारा रक्षा और ग्रामीण विकास की मदों पर किए गए खर्च के आंकड़े तालिका-8 में दर्ज हैं। ग्रामीण विकास का बजट उत्तरोत्तर बढ़ाया गया है लेकिन 1998-99 में ग्रामीण विकास का बजट, रक्षा बजट का मात्र 24 प्रतिशत है। भारत जैसे देश के लिए युद्ध की सामाजिक कीमत बहुत अधिक है। एक आधुनिक युद्ध टैंक की कीमत से देश के 500 गांवों

(शेष पृष्ठ 60 पर)

आम धारणा

गाँव में रहने वाला औसत व्यक्ति अपने अस्तित्व के लिये
मौसम और कर्ज देने वालों पर निर्भर करता है।

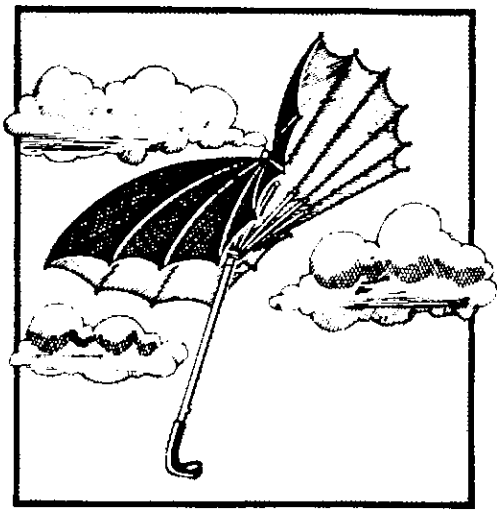

वास्तविकता

समय बदल चुका है। गाँवों का दृश्य भी बदल चुका है।
और अब ग्रामीण व्यक्ति अपना भाग्य स्वयं निर्धारित करता है।
क्योंकि आज राज्य सरकारों की पहल पर एन सी डी सी द्वारा आर्थिक सहायता प्राप्त किसान
सहकारी समितियों ने जगह-जगह पर उर्वरक संयंत्र, चीनी मिलें, तिलहन विधायन इकाईयाँ,
कताई मिलें – यहाँ तक कि कुक्कुट एव मत्स्य उद्योग भी स्थापित किये हैं।
और इनसे ग्रामीणों को रोज़गार के साथ-साथ विकास के कई अवसर प्राप्त हुए हैं।

सहकारी गतिविधियों की योजना बनाने, प्रोत्साहन, मार्गदर्शन एव उन्हें सहयोग देने से लेकर
संयत्रों की स्थापना, उत्पाद के विपणन एवं वितरण तक एन सी डी सी
ग्राम्य जीवन के हर क्षेत्र में शामिल है।
और क्यों न हो ? अच्छा मौसम तो
ग्राम्य जीवन में हमेशा ही
महत्वपूर्ण रहा है।

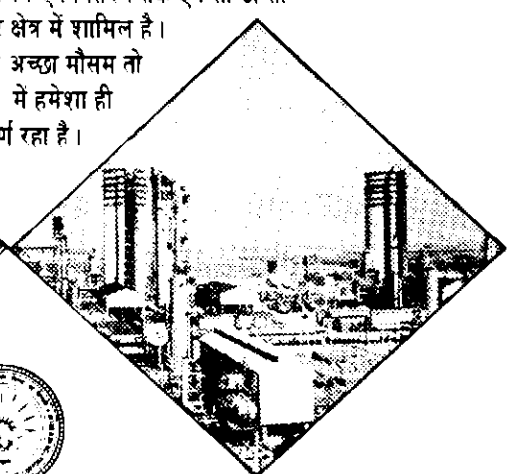

नेशनल को-ऑपरेटिव डेवलपमेंट कॉर्पोरेशन
4, सिरी इंस्टीट्यूशनल एरिया, हौज खास, नई दिल्ली-110016

एन सी डी सी – एक सहकारिता कथा

F.N/XIII-933 H.D

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम : गरीबी पर सीधा प्रहार

सुंदर लाल कुकरेजा*

स्वतंत्रता के तत्काल बाद से ही भारत में गरीबी दूर करने के लिए उस पर सीधे प्रहार शुरू किए गए। इसके लिए पहली पंचवर्षीय योजना में भी सामुदायिक विकास के कार्यक्रम चलाए गए। गरीबी दूर करने का सबसे महत्वपूर्ण साधन भारत के ग्रामीण अंचल में विकास की गति में तेजी लाना था क्योंकि गरीबों की सबसे अधिक आबादी गांवों में ही थी। एक तरह से गांव, गरीबी का पर्यायवाची बने हुए थे। पचास साल पहले के गांव और आज के गांव में दिन-रात का अंतर आ गया है। उस समय गांवों की जो दशा थी, वह अत्यंत दयनीय और शोचनीय थी। गांवों में न उद्योग धंधे थे, न खेती के लिए जमीन थी। छोटे-छोटे दस्तकार किसी तरह अपना गुजारा कर रहे थे। गांवों की कुल आबादी में से 90 प्रतिशत लोग कंगाली का जीवन जी रहे थे जिनके लिए न आजादी का कुछ अर्थ था और न जिन्हें शहरों में हो रहे विकास के फल मिल रहे थे। गांववासी या तो अपने आस-पास उपलब्ध संसाधनों से जीवन-यापन करते थे, अथवा बेरोजगारी और बदहाली की जिंदगी जीने को मजबूर थे। बीमारी, बेरोजगारी, बाढ़ और सूखे के थपेड़े खाता हुआ ग्रामीण जन संसाधनों के घोर अभाव में जी रहा था। यह संयोग की बात थी कि जिस ग्रामीण जनता ने स्वतंत्रता के संग्राम में बढ़-चढ़ कर भाग लिया था, उसमें स्वतंत्रता के बाद सामूहिक चेतना की भावना धीरे-धीरे लुप्त होती गई। पिछले पचास वर्षों में गांवों में विकास कार्यों के लिए हर पंचवर्षीय योजना में जन सहयोग पर भरोसा किया गया, किंतु लक्ष्य पूरे नहीं हो सके। इसलिए सरकार को ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में तेजी लाने के लिए कई प्रकार की योजनाएं और कार्यक्रम चलाने पड़े।

* विशेष संवाददाता, दैनिक हिंदुस्तान, नई दिल्ली

गरीबी की रेखा से नीचे रहने वालों को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का लाभार्थी माना गया और उन्हें अपनी आय बढ़ाने के लिए स्वरोजगार शुरू करने, अपना दस्तकारी या हाथ का काम करने, अन्य साधनों से अतिरिक्त आय जुटाने का अवसर देने के लिए सब्सिडी के रूप में सहायता और वित्तीय संस्थाओं या बैंकों से सस्ते ब्याज पर ऋण की सुविधा दिलाने के कार्यक्रम शुरू किए।

प्रारम्भिक प्रयास

हमारे स्वतंत्रता आंदोलन के अधिकांश नेता सीधे गांवों से जुड़े थे और उन्हें वहां की कठिनाइयों और समस्याओं की सीधी जानकारी थी, इसलिए उन्हें दूर करने के उपाय भी शुरू किए गए। सहकारिता और मिल-जुल कर अपनी मुश्किलें दूर करने की प्रेरणा उन्हें विदेशी शासन से संघर्ष के दिनों से ही मिली थी, इसलिए गांवों की दशा सुधारने के काम का आरंभ भी सामुदायिक विकास कार्यक्रमों से किया गया।

इस दिशा में सबसे पहले 1952 में, पहली पंचवर्षीय योजना में ही सामुदायिक विकास योजना शुरू की गई। सामुदायिक विकास वास्तव में एक अभियान था जिसके अंतर्गत ग्रामीण विकास, कृषि, पुशपालन, ग्रामोद्योग, स्वास्थ्य और महिला एवं बाल कल्याण आदि क्षेत्रों में समसामयिक रूप से आगे बढ़ने का प्रयास किया जा रहा था। इस योजना को आशा के अनुरूप सफलता तो नहीं मिली, लेकिन इससे प्राप्त अनुभव के आधार पर गांवों में प्रशासन के विकेंद्रीकरण की आवश्यकता महसूस की गई और बलवंतराय मेहता कमेटी की रिपोर्ट के आधार पर 1957 और 1967 के बीच विभिन्न राज्यों में पंचायती राज संस्थाएं गठित की गईं। इन संस्थाओं को केवल सामाजिक मान्यता थी, कोई संवैधानिक अधिकार नहीं थे, इसलिए ये संस्थाएं गांवों के लिए अधिक काम नहीं कर पाईं। अब आकर 1993 में संविधान के 73वें संशोधन द्वारा पंचायतों को संवैधानिक अधिकार दिए गए हैं।

ग्रामीण विकास के लिए इस परीक्षण की विफलता के बाद दूसरी योजना के अंत और तीसरी योजना के आरंभ में अधिकांश जिलों को ब्लाक या खंडों में बांट कर वहां स्थानीय स्तर पर कृषि कार्यों को बढ़ावा देने का प्रयास किया गया। 1961 में देश भर में ऐसे लगभग 5,000 राष्ट्रीय कृषि विस्तार सेवा खंडों का गठन किया गया था। इसके साथ ही भूमि सुधारों के लिए भी कदम उठाए गए, जमींदारी खत्म कर दी गई, भूमि हदबंदी कानून लागू हुए, चकबंदी शुरू की गई और फालतू जमीन का भूमिहीनों को वितरण किया गया। इसी दौरान आचार्य विनोबा भावे ने भूदान आंदोलन आरंभ कर एक नई सामाजिक जागृति लाने का अभियान शुरू किया।

ग्रामीण विकास और गरीबी पर सीधा प्रहार करने की रणनीति चौथी पंचवर्षीय योजना में अपनाई गई। इस रणनीति के अंतर्गत उन वर्गों और समूहों की पहचान की गई जिन्हें विकास की सबसे नीचे की सीढ़ी से ऊपर उठाने की जरूरत थी। इसी नीति के अंतर्गत चौथी पंचवर्षीय योजना काल में सीमांत किसान और कृषि मजदूर एजेंसी और छोटे कृषक विकास एजेंसी का गठन किया गया था। इनका उद्देश्य इन पिछड़े समूहों के विकास के लिए परिसंपत्तियों का निर्माण करना, उनकी छिपी प्रतिभा और कार्यकुशलता को आगे बढ़ाना और उसके साथ ही ग्रामीण क्षेत्र में कुछ बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध कराना था। इन दो एजेंसियों के साथ ही सामुदायिक क्षेत्र विकास और सूखा संभावित क्षेत्र विकास कार्यक्रम भी ग्रामीण विकास के लिए चलाए जा रहे थे। अक्सर यह पाया जाता था कि एक ही लक्ष्य की प्राप्ति के लिए काम कर रही इन विभिन्न एजेंसियों के बीच तालमेल का अभाव था और कई बार वे एक-दूसरे की विरोधाभासी गतिविधियों में लिप्त होती थीं।

ये कार्यक्रम अच्छे थे, लेकिन इनमें आपसी तालमेल और समन्वय के लिए 1978-79 में इनको मिला कर एक नया कार्यक्रम शुरू किया गया जिसे समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का नाम दिया गया।

इस कार्यक्रम का उद्देश्य ग्रामीण क्षेत्र में ऐसी परिसंपत्तियों का निर्माण करना था जिससे क्षेत्र के विकास के साथ-साथ गांव के गरीबों को अपना रोजगार खुद शुरू करने का अवसर भी मिल सके। इन गरीब परिवारों की पहचान के लिए कुछ मानदंड निर्धारित किए गए और उनके आधार पर सहायता कार्यक्रम आरंभ हुए। इन सहायता कार्यक्रमों के लाभ का पहला लक्ष्य उन परिवारों को बनाया गया जो गरीबी की रेखा से भी नीचे, कंगाली का जीवन जी रहे थे।

गरीबी की सीमा रेखा

गरीबी की सीमा रेखा तय करने के लिए यह मापदंड अपनाया गया कि किसी परिवार की आय क्या इतनी है कि वह उससे परिवार जनों के लिए न्यूनतम पौष्टिक भोजन प्राप्त कर सके। इस न्यूनतम पौष्टिकता के लिए प्रतिदिन प्रति व्यक्ति 1,800 कैलोरी लेना आवश्यक समझा गया और उसके आधार पर परिवार की आय का आकलन किया गया। बाद में कैलोरी की मात्रा और पौष्टिकता का स्तर बढ़ता गया। इसी स्तर को आधार मान कर समय-समय पर मुद्रास्फीति और मूल्य-वृद्धि को ध्यान में रखते हुए प्रति व्यक्ति प्रति माह की न्यूनतम आय, अलग-अलग राज्यों में वहां की परिस्थिति के अनुरूप निर्धारित की जाती रही। वर्ष 1996-97 में इसी आधार पर गरीबी की जो रेखा निर्धारित की गई, उसका राज्यवार विवरण तालिका-1 में दिया गया है।

तालिका-1

नई पद्धति से निर्धारित गरीबी की रेखा 1996-97

(प्रति व्यक्ति प्रति माह)

राज्य	ग्रामीण क्षेत्र (रुपये)
आंध्र प्रदेश	216.65
अरुणाचल प्रदेश	80.85
असम	280.85
बिहार	263.13
गोवा	266.97
गुजरात	254.00
हरियाणा	289.31
हिमाचल प्रदेश	289.31
जम्मू-कश्मीर	258.74
कर्नाटक	255.12
केरल	327.48
मध्य प्रदेश	245.70
महाराष्ट्र	266.97
मणिपुर	280.85
मेघालय	280.85
मिजोरम	280.85
नगालैंड	280.85
उड़ीसा	249.69
पंजाब	289.31
राजस्थान	273.65
सिक्किम	280.85
तमिलनाडु	269.07
त्रिपुरा	280.85
उत्तर प्रदेश	272.53
पश्चिम बंगाल	274.35
चंडीगढ़	300.91
दादरा व नागर हवेली	266.97
दमन व दीव	266.97
दिल्ली	289.31
लक्षद्वीप	327.48
पांडिचेरी	269.07
अखिल भारतीय	266.27

इस गरीबी की रेखा से नीचे रहने वालों को समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का लाभार्थी माना गया और उन्हें अपनी आय बढ़ाने के लिए स्वरोजगार शुरू करने, अपना दस्तकारी या हाथ का काम करने, अन्य साधनों से अतिरिक्त आय जुटाने का अवसर देने के लिए सब्सिडी के रूप में सहायता और वित्तीय संस्थाओं या बैंकों से सस्ते ब्याज पर ऋण की सुविधा दिलाने के कार्यक्रम शुरू किए। शुरू में यह कार्यक्रम देश भर के 2,300 खंडों में लागू किया गया, लेकिन 2 अक्तूबर 1980 से यह देश के सभी भागों में चालू है। यह केंद्र सरकार की योजना है।

गांव के गरीबों में भी क्योंकि अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां, महिलाएं और विकलांग सबसे पिछड़े वर्ग हैं, इसलिए इस कार्यक्रम में इन समूहों को विशेष महत्व देकर उनके लिए सहायता सुनिश्चित की गई है।

यद्यपि यह केंद्र सरकार की वित्तीय सहायता से चलाया जा रहा राष्ट्रीय कार्यक्रम है, किंतु इसके लिए गरीबों की पहचान और उन्हें सहायता राशि का वितरण, राज्य सरकारों की मदद से किया जाता है। केंद्र सरकार, राज्यों को उनकी गरीबी की रेखा से नीचे की आबादी के अनुरूप सहायता राशि का आबंटन करती है।

गरीबी की रेखा से नीचे के गरीबों की आबादी वास्तव में कितनी है, इसका आकलन करने के दो तरीकों से अलग-अलग संख्याएं उपलब्ध थीं, लेकिन योजना आयोग ने गत वर्ष लकड़ावाला समिति की रिपोर्ट को स्वीकार करके इस विवाद को अधिकृत रूप से खत्म कर दिया है। इस रिपोर्ट के आधार पर देश की लगभग 36 प्रतिशत आबादी अब भी गरीबी की रेखा से नीचे जीवन गुजार रही है। इस सीमा-रेखा के निर्धारण के मानदंडों के अनुरूप इस आबादी का हर राज्य में प्रतिशत परिवर्तित होता रहा है। पिछले 25 वर्षों के दौरान अलग-अलग राज्यों में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या के प्रतिशत का विवरण तालिका-2 में दिया गया है। इस आबादी का आकलन हर पांच वर्ष में एक बार किया जाता है।

इस कार्यक्रम में केंद्र सरकार से प्राप्त राशि का जिलों को आबंटन राज्य सरकारें भी करती हैं और जिला ग्रामीण विकास एजेंसियां भी खंडों को उनकी गरीबी की आबादी के अनुसार इसका वितरण करती हैं।

इस योजना के अधिकांश लाभार्थी छोटे और सीमांत किसान, भूमिहीन कृषि मजदूर और गांवों के कारीगर, दस्तकार आदि हैं जिनके परिवारों की वार्षिक आय 1991-92 के मूल्यों के अनुसार 11 हजार रुपये से कम है। इन लाभार्थियों में भी विशेष सहायता के उद्देश्य से आरक्षण दिए गए हैं। यह निर्धारित किया गया है कि इस योजना का लाभ उठाने वालों में से कम-से-कम 50 प्रतिशत अनुसूचित जातियों और अनुसूचित जनजातियों के परिवार हों और इन परिवारों सहित, कुल लाभार्थियों में कम-से-कम 40 प्रतिशत महिलाएं हों। शारीरिक रूप से विकलांगों को भी न्यूनतम 3 प्रतिशत का आरक्षण दिया गया है।

तालिका 2

विभिन्न राज्यों में गरीबी की रेखा से नीचे रहने वाली जनसंख्या का प्रतिशत

राज्य	1973-74	1977-78	1983	1987-88	1993-94
अखिल भारतीय औसत	54.88	51.32	44.48	38.86	35.97
उड़ीसा	66.18	70.00	65.29	55.50	48.56
पश्चिम बंगाल	63.43	60.52	54.85	44.72	35.66
बिहार	61.91	60.55	62.23	52.13	54.96
मध्य प्रदेश	61.78	61.78	49.78	43.07	42.52
केरल	59.79	52.22	40.42	31.78	25.43
लक्षद्वीप	59.68	52.79	42.86	34.95	25.04
उत्तर प्रदेश	57.07	49.05	47.07	41.48	40.85
अण्डमान निकोबार	55.66	55.42	52.13	43.39	34.47
तमिलनाडु	54.94	54.79	51.66	43.39	35.03
कर्नाटक	54.47	48.78	38.24	37.53	33.16
पाण्डिचेरि	53.82	53.25	50.06	41.46	37.40
महाराष्ट्र	53.24	55.88	43.44	40.41	36.86
अरुणाचल प्रदेश	51.93	58.32	40.85	36.22	39.35
असम	51.21	57.15	40.47	36.21	40.86
त्रिपुरा	51.00	56.88	40.43	35.23	39.01
सिक्किम	50.86	55.89	39.71	36.06	41.43
नगालैण्ड	50.81	56.04	39.25	34.43	37.92
मिज़ोरम	50.22	54.38	36.00	27.52	25.56
मेघालय	50.20	55.19	38.81	33.92	37.82
मणिपुर	49.96	53.72	37.02	31.35	33.73
दिल्ली	49.61	33.23	26.22	12.41	14.69
आंध्र प्रदेश	48.86	39.31	28.91	25.86	22.19
गुजरात	48.15	41.23	32.79	31.54	24.21
राजस्थान	46.64	37.42	34.46	35.15	27.41
दादरा व नगर हवेली	46.55	37.20	15.67	67.11	50.84
गोवा	44.28	37.23	18.90	24.52	14.92
जम्मू-कश्मीर	40.83	38.97	24.24	23.82	25.17
हरियाणा	35.35	29.55	21.37	16.64	25.05
पंजाब	28.15	19.27	16.18	13.20	11.77
चण्डीगढ़	27.98	27.32	23.79	14.87	11.35
हिमाचल प्रदेश	26.39	32.45	16.40	15.45	28.44

जिस देश की एक-तिहाई से अधिक आबादी दरिद्रता का जीवन जी रही हो, उसमें गरीबी दूर करने के लिए कोई भी कदम सही माना जा सकता है। लगभग सौ करोड़ आबादी वाले देश भारत में इतनी दरिद्रता रहे, यह हमारे देश के लिए ही नहीं, संपूर्ण विश्व के लिए घातक है। गरीबी केवल आय की कमी नहीं दर्शाती। यह बेरोजगारी, उद्योगों में ठहराव, कृषि क्षेत्र की उपेक्षा और सरकार के अनुत्पादक खर्च की भी पहचान है।

नारे अधिक, काम कम

इतनी गरीबी के बावजूद, हमने गरीबी उन्मूलन के लिए नारे तो बहुत लगाए, लेकिन इस काम को कभी गंभीरता से नहीं लिया। दशकों तक सरकारी फाइलों में गरीबों की संख्या घटते जाने के आंकड़े दिखाए जाते रहे और सार्वजनिक मंचों से इसकी घोषणाएं होती रहीं, लेकिन वस्तुत: गरीबों की संख्या और गरीबी का भयावह चेहरा बढ़ता रहा। सरकारी दावों के बावजूद केंद्र सरकार के बजट इसकी पुष्टि नहीं कर पाते थे कि गरीबी घट रही है। अगर वास्तव में यह दावे सही होते तो गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों पर हो रहे खर्च में कहीं तो कमी दिखाई देती। इसके विपरीत, असलियत यह है कि खाद्यान्न पर दी जा रही सब्सिडी की मात्रा हर साल बढ़ती जा रही है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के लिए भी हर साल पहले से अधिक व्यवस्था करनी पड़ती है। गरीबी के सबसे बड़े अभिशाप के रूप में ग्रामीण क्षेत्रों में कुल मृत्यु दर, या बाल और महिला मृत्यु दर में कोई कमी नहीं आ रही है। अब भी हम हर साल गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों के लिए अधिक धन के आबंटन को उद्देश्य की सफलता मान कर चल रहे हैं और आज भी काम के बदले अनाज को अकाल और भुखमरी के विरुद्ध सबसे प्रभावी उपाय समझा जा रहा है।

अगर हमने पूंजी प्रधान उत्पादन प्रक्रिया को ही प्रधानता दी तो भारत में भी उसके वही परिणाम होंगे जो अन्य देशों में हुए हैं। हमें श्रम को महत्व देने वाले उपाय करने होंगे। आज के युग में भी महात्मा गांधी का चरखा भारत की ग्रामीण तकनीक का प्रतीक चिह्न बना हुआ है। गरीबी मिटाने का हमारा प्रतीक भी यह चरखा ही है।

गरीबी और कृषि विकास

गरीबी का सीधा संबंध कृषि विकास और उत्पादन से जुड़ा है, लेकिन भारत में कृषि विकास की जो उपेक्षा की गई, उससे गरीबी को मिटाने में नहीं, बढ़ाने में ही मदद मिली है। कृषि की इसी उपेक्षा के कारण देश में कभी गेहूं, कभी चीनी और कपास, तो कभी खाद्य तेलों की कमी दिखाई देती है और उसका सबसे अधिक असर गरीबों पर पड़ता है। किसानों को न बिजली मिलती है, न सिंचाई के लिए पानी और उस कृषि पर निर्भर गरीब ऐसी असहाय स्थिति में पहुंच गया है जहां सरकारी सहायता के कार्यक्रम भी उसकी मदद नहीं कर पाते। इसी का असर उद्योगों पर भी दिखाई देता है।

यह तथ्य अब बहुत कम लोगों को चौंकाते हैं कि गांवों में खेती से जुड़े 85 प्रतिशत किसान अब केवल खेती नहीं करते, वे खेतिहर मजदूर का काम करने को भी विवश हैं। आज गांवों में रहने वाले 62 प्रतिशत पुरुष और 35 प्रतिशत महिलाएं मजदूरी करके ही अपना परिवार पाल रहे हैं। किसानों की फसल का वसूली या समर्थन मूल्य बढ़ाना, गरीबों की मदद का एक और तरीका समझा जाता है,लेकिन इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया जाता है कि आज अधिसंख्य किसानों के पास जोत की भूमि इतनी कम है कि वह अपने खाने लायक अनाज भी कठिनाई से उपजाते हैं। अधिक वसूली मूल्य का लाभ उठाने के लिए उनके पास अनाज ही नहीं होता। जो किसान अनाज बेचते भी हैं, उनकी भी मजबूरी यही होती है कि उन्हें अन्य कामों के लिए नकद रकम की जरूरत रहती है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम का उद्देश्य, गांव के गरीबों को अपनी रोजी-रोटी कमाने का अवसर देना है। इसके लिए केवल सस्ता ऋण और सब्सिडी देना ही पर्याप्त नहीं होगा। भारत पर आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों की नजरें लगी हुई हैं। ये कंपनियां भारत को अपना उत्पादन केंद्र बनाने और उसके लिए पूंजी निवेश करने को तैयार हैं। भारत में श्रम सस्ता है, इसलिए वह पूंजी की ओर आकृष्ट होगा लेकिन अगर हमने गरीबी उन्मूलन के अपने लक्ष्य प्राप्त करने हैं तो रोजी की व्यवस्था के लिए सरकार को अपनी उत्पादन-नीतियों में परिवर्तन करना पड़ेगा। अगर हमने पूंजी प्रधान उत्पादन प्रक्रिया को ही प्रधानता दी तो भारत में भी उसके वही परिणाम होंगे जो अन्य देशों में हुए हैं। हमें श्रम को महत्व देने वाले उपाय करने होंगे। आज के युग में भी महात्मा गांधी का चरखा भारत की ग्रामीण तकनीक का प्रतीक चिह्न बना हुआ है। गरीबी मिटाने का हमारा प्रतीक भी यह चरखा ही है।

गांव के गरीबों को रोजी-रोटी देने के लिए यह भी जरूरी है कि असंगठित क्षेत्र में उत्पादित होने वाले माल की बिक्री की भी व्यवस्था सुनियोजित ढंग से की जाए। गांवों में आज विश्व की आधुनिकतम उपलब्धियां संचार और सूचना माध्यमों से पहुंच रही हैं, लेकिन वहां आने-जाने के रास्ते नहीं हैं। हर साल विनाशकारी बाढ़, वर्षों का विकास और अरबों की संपत्ति नष्ट कर जाती है। ग्रामीण क्षेत्रों के समन्वित विकास के लिए यह भी जरूरी है कि हमारा दृष्टिकोण भी व्यापक हो और हमारी नीतियों के साथ-साथ नीयत भी पारदर्शी हो। तभी गरीबी पर सीधा प्रहार करने के हमारे प्रयास सफल होंगे। ❑

".....हमारी पीढ़ी के महापुरुष की अभिलाषा हर आंख के आंसू पोंछना रही है। ऐसा करना हमारे वश के बाहर हो सकता है लेकिन जब तक आंसू और पीड़ा है, तब तक हमारा कार्य पूरा नहीं होगा....."

—जवाहरलाल नेहरू

हमारी योजनाएं, हमारे गांव और हमारा काम

प्रोफेसर के.डी. गंगराडे*

एक किसान के दो बेटे थे—बड़ा बेटा चालाक और छोटा सीधा-सादा और ईमानदार। किसान की मृत्यु के बाद उसकी विरासत—एक नारियल का पेड़, एक गाय और एक कम्बल वसीयत के रूप में दोनों बेटों को मिले। बड़ा बेटा चालाक था और उसे मालूम था कि पेड़, गाय और कम्बल तीनों को दो बराबर हिस्सों में नहीं बांटा जा सकता। इसलिए उसने छोटे भाई के सामने प्रस्ताव रखा कि पेड़ का निचला हिस्सा, गाय के शरीर का अगला भाग और दिन में कम्बल छोटे भाई के पास रहेगा और पेड़ का ऊपरी भाग, गाय के शरीर का पिछला भाग और रात्रि को कम्बल स्वयं उसके यानी बड़े भाई के पास रहेगा। छोटे भाई ने बड़े भाई का सुझाव मान लिया। अब छोटा भाई नारियल के पेड़ को खाद और पानी देता लेकिन फल (नारियल) बड़े को मिलते, गाय का चारा देना छोटे भाई की जिम्मेदारी थी लेकिन दूध पर बड़े भाई का हक था। दिन में जब जरूरत न हो तो कम्बल छोटे भाई के पास और रात में जब तेज ठंड पड़ती, कम्बल का इस्तेमाल बड़ा भाई करता। अचानक एक दिन छोटे भाई को लगा कि बड़े भाई ने उसे ठग लिया है। दूसरे दिन उसने कुल्हाड़ी उठाई और नीचे से पेड़ को काटना शुरू कर दिया। बड़े भाई ने आपत्ति की लेकिन छोटे भाई ने साफ-साफ कह दिया कि पेड़ के निचले हिस्से पर तो उसका हक है। बड़े भाई को समझ आ गई। उसने छोटे भाई को पेड़ के फल और पेड़ की निगरानी तथा खाद-पानी के लिए मजदूरी देनी शुरू कर दी। जब बड़ा भाई गाय का दूध निकालता तब छोटा भाई गाय को पीटना शुरू कर देता। गाय गुस्से में बड़े भाई को उठाकर फेंक देती। अब बड़े भाई के पास सिवाय इसके कोई रास्ता नहीं था कि वह छोटे भाई को दूध में बराबर का हिस्सा दे। अब रही कम्बल की समस्या। छोटा भाई कम्बल को दिन में पानी से गीला कर देता और शाम के वक्त जब बड़ा भाई कम्बल लेने आता तो छोटा भाई उसे गीला कम्बल पकड़ा देता। बड़े भाई को अब सारी बात समझ में आ गई और वह छोटे भाई के साथ पेड़, गाय और कम्बल के समान प्रयोग और भागीदारी के लिए राजी हो गया।

ऊपर की कहानी से मिलती-जुलती हालत हमारे देश के शहर और गांव की है। शहर में रहने वाले बड़े भाई की तरह और गांव में रहने वाले छोटे भाई की तरह और एक के द्वारा दूसरे का शोषण जारी है। शहर और गांव का विभाजन बिल्कुल साफ है। आठवीं और नौवीं योजना में भी यह विभाजन स्पष्ट है। सरकारें तो आती-जाती रहती हैं परंतु शहर और गांव के बीच की यह बढ़ती हुई खाई आज तक कोई नहीं भर पाया है। इसका परिणाम यह है कि गांवों में निर्धनता और भुखमरी लगातार बढ़ती जा रही है। इस दृष्टि से हमारे देश में गांवों में सिर्फ आर्थिक क्रांति ही नहीं वरन् समानता और भाई-चारे से उपजी सांस्कृतिक क्रांति भी जरूरी है। हमने अपनी योजनाओं में सांस्कृतिक पहलुओं की अपेक्षा आर्थिक मुद्दों पर कुछ जरूरत से ज्यादा बल दिया है। कहने का अर्थ यह नहीं है कि हम आर्थिक पहलुओं की उपेक्षा करें। आर्थिक पहलू भी महत्वपूर्ण हैं। भूमि सुधार के लिए यह जरूरी है। ऐसा करने से गांव से शहर की ओर संचरित होने वाले आर्थिक स्रोतों को रोका जा सकेगा। ऐसा करने से खेती में जुटा परिवार आर्थिक स्रोतों का अधिक उपयोग-उपभोग कर सकेगा। गांवों में 71 प्रतिशत भूमि 23.8 प्रतिशत जमींदार के पास है जबकि 8 करोड़ 73 लाख किसानों के पास दो हेक्टेयर से भी कम जमीन है।

पंचायती राज संस्थाओं को मजबूत बनाना होगा जिससे कि गरीबी हटाओ कार्यक्रम के लिए वे एक प्रभावी संस्था बन सकें। जनता को शक्ति देने का अर्थ जन कल्याण कार्यक्रमों में भी जन-विश्वास तथा जन-भागीदारी है। सभी आर्थिक कार्यक्रमों पर भी यह समान रूप से लागू होता है।

प्रसिद्ध गांधीवादी श्री जे.सी. कुमारप्पा ने 'स्थायी अर्थ व्यवस्था' जो आजकल 'संपोषित विकास' के नाम से प्रचलित है, में इस विचारधारा का प्रतिपादन किया। औद्योगिक जीवन तथा पूर्व घटित चिंतन अविभाज्य रूप से जुड़े हुए हैं। जब कभी कोई नया कारखाना बनता है उसके लिए आधारभूत सामग्री उस जमीन से मिलती है जो अन्न का उत्पादन कर रही होती है।

श्री कुमारप्पा एक गांव में एक वृद्धा से मिले और उसने बताया कि "जब वह एक लड़की थी तब इस जमीन पर चावल की फसल हुआ करती थी। लेकिन हमें जमीन के लिए अच्छा दाम दिया गया और अब इस जमीन पर नारियल के पेड़ उगाए जाते हैं और हमारे पास इन पेड़ों को खरीदने के लिए पैसा नहीं है। अब हमारे पास न तो चावल हैं और न ही

*भूतपूर्व समकुलपति, दिल्ली विश्वविद्यालय

नारियल।'' नारियल मिलों में लाकर नारियल तेल तथा अन्य उत्पादों में परिवर्तित की जाती है।

अप्रभावी रहे हैं। कार्यक्रम आवश्यकता से अधिक [illegible]

एक संग्रहणीय पुस्तक

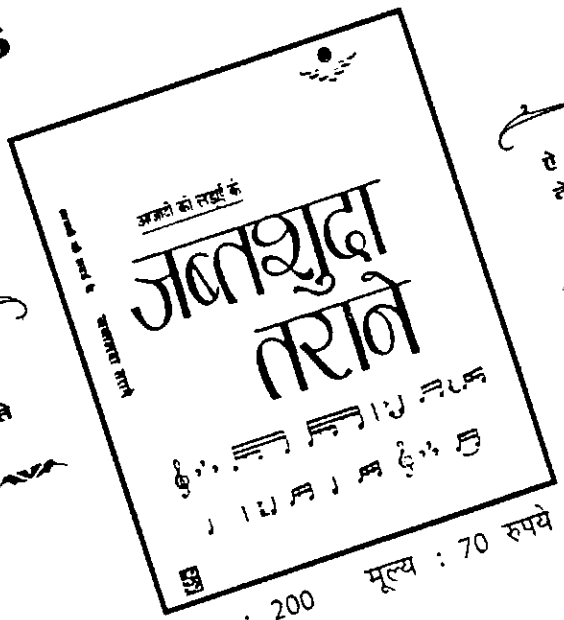

ऐ वतन! उस वक्त भी मैं
तेरे नग़मे गाऊंगा
अहद करता हूं कि मैं
तुझ पर फिदा हो जाऊंगा!

हुक्म जारिबर कत्लगह में
जब सुनाया जाएगा
जब मुझे फांसी के तख्ते
पर चढ़ाया जाएगा

पृष्ठ : 200 मूल्य : 70 रुपये

–गीत, जिन्होंने देश की चेतना को जगाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई!
–नग़मे, जिनसे घबराकर ब्रिटिश शासन ने इन्हें ज़ब्त कर लिया!

स्थानीय एजेंट से खरीदें अथवा निम्नलिखित पते पर मनीआर्डर/ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर भेजकर मंगाएं।

व्यापार व्यवस्थापक

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय,
पटियाला हाउस, नई दिल्ली-110001

प्रकाशन विभाग के बिक्री केंद्र :

पटियाला हाउस, तिलक मार्ग, नई दिल्ली; सुपर बाजार कनाट प्लेस, नई दिल्ली; हाल नं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली; राजाजी भवन, चेन्नई; 8, एस्प्लेनेड ईस्ट, कलकत्ता; विहार राज्य सहकारिता बैंक बिल्डिंग, अशोक राजपथ पटना; गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुअनंतपुरम; 27/6, राम मोहन राय मार्ग, लखनऊ; कामर्स हाउस, करीय भाई रोड, बालार्ड पायर, मुंबई; राज्य पुरातत्व संग्रहालय बिल्डिंग, पब्लिक गार्डन, हैदराबाद; प्रथम तल, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला बंगलौर, सी.जी. ओ. कमपलेक्स, 'ए' विंग, ए.बी रोड, इंदौर; 80 मालवीय नगर, भोपाल; के-21, नंद निकेतन, मालवीय मार्ग, 'सो' स्कीम, जयपुर।

ग्रामीण-विकास तथा गरीबी-निवारण : सार्थक सोच के आयाम

कमल नयन काबरा *

आर्थिक बढ़त तथा प्रगति के लिए भारत में आजादी के बाद प्रचलित प्रारूप के अन्तर्गत ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक गतिविधियों की उत्पादकता बढ़ाने, ग्रामीण क्षेत्रों में मूलभूत ढांचे तथा सेवाओं का प्रसार करने, गांवों के गरीबों के लिए भूमि का पुनर्वितरण करने, उत्पादक परिसंपत्तियां उपलब्ध कराने और स्वरोजगार को बढ़ावा देने के अनेक कार्यक्रम लागू किए गए। ग्रामीण ऋण तथा कृषि और गैर-कृषि क्षेत्र की भंडारण, विपणन, यातायात तथा संचार सेवाओं में सुधार, नई सहकारी तथा सरकारी संस्थाओं की भागीदारी बढ़ाना तथा इन सभी कामों को अंजाम देने के लिए विशेष प्रशासनिक व्यवस्थाओं का प्रचलन भी ग्रामीण विकास की परिकल्पना के हिस्से थे। खेती, सिंचाई, वन-विकास, विद्युतीकरण और कुटीर उद्योगों आदि के सुदृढ़ीकरण तथा विकास के कार्यक्रम भी गांवों की तरक्की की कोशिशों के हिस्से थे। यह भी आशा की गई थी कि पूरी अर्थ व्यवस्था की बढ़त दर, खासकर प्रति व्यक्ति आय बढ़ाने की कोशिशें, प्रयत्क्ष तथा अप्रत्यक्ष तरीकों से गांवों में बसी जनता को भी लाभान्वित करेंगी। विकास के प्रतिफलों को अनेक रूपों में निचले स्तरों तक पहुंचाना बाजार प्रक्रियाओं द्वारा होता रहता है, ऐसी हमारे योजनाकारों की मान्यता थी। इसी सोच के तहत यह कल्पना की गई थी कि औद्योगीकरण तथा आर्थिक विकास के तहत होने वाले ढांचागत परिवर्तनों, खासकर कृषि क्षेत्र में लोगों की संख्या घटने तथा गैर-कृषि क्षेत्र में बढ़ने तथा नगरीकरण के कारण और गांवों तथा शहरों के बीच प्रगाढ़ होते सकारात्मक संबंधों के कारण ग्रामीण जीवन में परिवर्तन आएंगे। इन योजनाओं, नीतियों और कार्यक्रमों में लगातार फेर-बदल होते रहे हैं। देसी-परदेसी अनुभवों तथा विशेषज्ञों की राय के अलावा उभरते राजनीतिक-आर्थिक प्रभावों के कारण भी इन कार्यक्रमों में परिवर्तन-परिवर्धन तथा संशोधन होते रहे हैं।

इन कार्यक्रमों की काफी स्तरों पर, कई तरीकों से, कार्यक्रमों के साथ-साथ और उनकी समाप्ति के विभिन्न चरणों पर समीक्षा की गई। इस विषय पर सोच-समझ और छानबीन के स्तर पर इतना काम हुआ है कि आश्चर्य होता है। फिर भी हमारे ग्रामीण विकास कार्यक्रम मूल-रूप में न तो अपनी प्रकृति बदल पाए हैं और न ही प्रभावी होने की दिशा में, कोई चमत्कार तो दूर, समस्या की वास्तविक प्रकृति तक के अनुरूप बन पाए हैं और खासकर सरकारी हलकों में इनकी प्रकृति तथा प्रभावों की उपयुक्त समझ भी नहीं बन पाई है। कभी-कभी अनुसंधान तथा चिंतन के स्तर पर अवश्य कुछ गहरी पैठ वाले सूत्र दिखाई दे जाते हैं, पर उनका पूरा तथा विश्वसनीय खुलासा अभी कम ही हो पाया है। साथ ही किन सामाजिक-तकनीकी प्रक्रियाओं द्वारा इस प्रभावी सोच तथा विमर्श को व्यावहारिक रूप विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार दिया जा सकता है तथा किस तरह इनके लागू होने की पुख्ता व्यवस्था की जा सकती है, इस दिशा में अभी बहुत कुछ करना बाकी है।

एक-दो उदाहरणों द्वारा हम उपरोक्त कुछ अमूर्त-सी बात को ठोस रूप में स्पष्ट कर सकते हैं। ग्रामीण विकास की लगभग सभी नीतियां और कार्यक्रम केन्द्र सरकार अथवा राज्य सरकारों के स्तर पर बनाए गए हैं। विशेषज्ञों तथा प्रशासकों ने राजनीतिक लोगों के कुछ योगदान से ग्रामीण जीवन को बेहतर बनाने के तरीके खोजे तथा लागू किए। ग्रामीण-स्थिति के अध्ययनों का लाभ उठाकर ग्रामीण विकास योजनाओं का खाका तैयार किया गया। जानी-मानी और पुरानी बात है कि ऊपर से लादी और लागू की गई, जनता की गैर-भागीदारी वाली योजनाओं का आमतौर पर उल्टा असर होता है। इसीलिए विकेंद्रीकरण के उद्देश्य से पंचायती राज जैसी संस्थाओं की व्यवस्था की गई। इनके चलते कुछ शुरुआतें सही दिशा में हुई हैं और उससे भी ज्यादा महत्व की बात है कि हम अनेक संभावनाओं की अधिकतर आशाजनक और सकारात्मक देहरी पर आ खड़े हुए हैं।

यहां एक बात का खुलासा जरूरी है। ग्रामीण-विकास तथा गरीबी हटाने की नीतियों और कार्यक्रमों को ज्यादा दूर तक अलग-अलग करके नहीं रखा जा सकता। गरीबी के सवाल से कटा-छंटा ग्रामीण विकास, ग्राम्य जीवन में अपेक्षाकृत समृद्ध तबके की चेरी बन कर रह जाएगा। ऐसे कार्यक्रमों के नतीजों को विकास का नाम देना विकास तथा कुविकास के भेद को ही मिटा देगा। नतीजा यह होगा कि जिन आधारों पर ग्रामीण विकास को विकास-प्रक्रिया का एक अपनी अलग पहचान वाला अभिन्न अंग माना गया है, उन्हीं आधारों को नकार दिया जाएगा। दूसरे शब्दों में,

* प्रोफेसर, अर्थशास्त्र, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली

विकास के तहत ग्रामीण विकास को जिन आधारों पर एक अलग और मुख्य स्थान दिया गया है, उन्हीं कारणों का यह तकाजा है कि ग्रामीण विकास नीति की आत्मा, उसका केन्द्र बिन्दु, गरीबी निवारण को ही बनाए रखा जाए क्योंकि अधिकांश ग्रामीण लोग गरीब और वंचित हैं। इसीलिए ग्रामीण विकास हमारी विकास-प्रक्रिया का प्रमुख माना गया है। ऐसे विशिष्ट अवयवों के समावेश के बिना 'केन्द्रीकृत विकास' उन लोगों को अछूता छोड़ देगा जो विकास के सबसे मुख्य हकदार हैं। यह कहना बहुत मुश्किल होगा कि हमारे पांच दशकों के ग्रामीण क्षेत्रीय कार्यक्रमों में इस विचार-बिन्दु को स्पष्ट और प्रभावी स्थान दिया गया है या नहीं। आज के ग्रामीण जीवन की यह त्रासदी है कि आज तक का ग्रामीण विकास सारे गांव को एक इकाई मान कर, उसके विभेदित रूप को महज सतही तौर पर स्वीकार करके उनका पक्षधर नहीं बन पाया जो सदियों की पूंजीभूत उपेक्षा तथा शोषण के शिकार रहे हैं।

ग्रामीण क्षेत्र की आर्थिक क्रियाओं में उत्पादन बढ़ाने के प्रयासों को सर्वाधिक प्राथमिकता दी गई थी। भूमि, जल, प्राकृतिक संसाधनों, खासकर साझी संपत्ति वाले संसाधनों पर, एक छोटे-से तबके का अत्यधिक, गैर-अनुपातिक नियंत्रण न केवल बना हुआ है अपितु बढ़ा भी है। सिंचाई, बिजली, खाद, कर्ज, सड़कें, नियमित मंडियां आदि जरूरी तो हैं परंतु उनका लाभ चंद लोगों तक ही सिमटा रहता है। इस प्रक्रिया के जरिए जो नए शक्ति-संतुलन और समीकरण बनते हैं, ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में उनका सामाजिक-राजनीतिक प्रभाव 'ग्रामीण विकास' को गरीबों के हित साधन तथा उन्हें शक्ति-संपन्न करने की प्रवृत्ति को और ज्यादा कमजोर कर देता है। इस तरह 'ग्रामीण विकास' आदि के लिए सारे योजना-व्यय को 60 प्रतिशत तक बढ़ाने आदि के वायदे व्यवहार में गांवों के धनी-मानी लोगों, बिचौलियों, ठेकेदारों, सरकारी कर्मचारियों आदि को और ज्यादा धनी बनाने तथा कमजोर व उपेक्षित तबकों को मात्र बहलाने भर के साधन बन जाते हैं।

जानी-मानी और पुरानी बात है कि ऊपर से लादी और लागू की गई, जनता की गैर-भागीदारी वाली योजनाओं का आमतौर पर उल्टा असर होता है। इसीलिए विकेंद्रीकरण के उद्देश्य से पंचायती राज जैसी संस्थाओं की व्यवस्था की गई। इनके चलते कुछ शुरुआतें सही दिशा में हुई हैं और उससे भी ज्यादा महत्व की बात है कि हम अनेक संभावनाओं की अधिकतर आशाजनक और सकारात्मक देहरी पर आ खड़े हुए हैं।

इन्हीं लोक-दिखाऊ, लोक-लुभाऊ नीतियों पर अवास्तविक नीति-रीति का एक दूसरा पहलू भी गम्भीरता से उठाया जाना जरूरी हो गया है। गांवों के गरीबों की संख्या के कई अनुमान समय-समय पर लगाए जाते हैं। फिर इन गरीबों की संख्या के एक हिस्से को रोजगार, शिक्षा, चिकित्सा, पेयजल, स्वरोजगार, कर्ज-वितरण आदि उपलब्ध कराने के कुछ लक्ष्य तय कर लिए जाते हैं। इस तरह एक समयबद्ध कार्यक्रम बनाया जाता है कि कालान्तर में इन कार्यक्रमों के जरिये सभी चिन्हित गरीबों को गरीबी की रेखा के ऊपर ला दिया जाएगा। आर्थिक 'विकास', ग्रामीण 'विकास' तथा विशेष कार्यक्रमों की मदद से इस तरह एक समय-सीमा में गरीबी समाप्त करने के लक्ष्य कई बार तय किए जा चुके हैं। इन कार्यक्रमों में बार-बार बदलाव, उनके अमल की खामियों तथा अपर्याप्त संसाधन आबंटन के कारण तथा समष्टिगत स्तर पर आई रुकावटों के कारण ये लक्ष्य बार-बार आगे की तिथि के लिए बढ़ा दिए हैं। मेरा मानना है कि यदि उपरोक्त दिक्कतें दूर भी कर दी जाएं तब भी इन कार्यक्रमों और नीतियों के जरिये न तो गरीबी हट पाएगी और न ही ग्रामीण 'विकास' शेष राष्ट्र के 'विकास' के समकक्ष अथवा उससे उचित फासले पर आ पाएगा। असली बात तो यह है कि इन तरीकों से लाया गया बदलाव वास्तविक अर्थों में जनोन्मुख, आंतरिक-शक्तियों से प्रेरित, निर्बल वर्गों का सशक्तिकरण करने वाला विकास हो ही नहीं सकता।

देखने वाली बात यह है कि गरीबी को मात्र क्रय-शक्ति अथवा आमदनी अथवा उपभोग के एक परिभाषित स्तर के रूप में देखना गलत है। जीवन के बहुआयामी रूपों को केवल उपभोग के एक स्तर से जोड़ देना असंगत, भ्रामक, एकांगी और असमानताओं तथा परनिर्भरता का पोषक है। बाजार, सरकार, शक्ति-संतुलन, जनसंख्या परिवर्तन, शिक्षा-प्रशिक्षण, तकनीकी परिवर्तनों और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक और गैर-आर्थिक प्रभावों के कारण गरीबों की संख्या, गरीबी के रूपों, गरीबी के प्रभावों और नतीजों में लगातार बदलाव आता रहता है। आज के भारत में उपरोक्त कारकों का प्रभाव गरीबों की संख्या बढ़ाता है, गरीबी की मार को और ज्यादा दु:खद तथा असहनीय बनाता है और गरीबी हटाने के प्रयासों को कमजोर तथा पंगु करता है। अभी जो कार्यक्रम चलाए जा रहे हैं वे गरीबी के कारणों, स्रोतों तथा गरीबी विरोधी ताकतों पर चोट नहीं करते, उनके कारण गरीबी हटाने की दलाली करने वालों तथा 'पोवर्टीशियन्स' की साख तथा शक्ति बढ़ती है। गरीबी हटाने-घटाने के ये सांकेतिक, एकांगी, हमेशा के लिए जरूरी बने रहने वाले कार्यक्रम अपने संचालन-प्रबंधन के तरीकों के कारण समाज में बेहतर स्थिति वाले लोगों को अपनी स्थिति और ज्यादा सुधारने के नए-नए अवसर देते हैं।

अभी हाल ही में उपलब्ध एक सरकारी आंकड़े से हमारी बात की कड़वी सच्चाई को रेखांकित किया जा सकता है। समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम के तहत अब तक 11434.77 करोड़ रुपये खर्च करके पांच करोड़ 9 लाख 90 हजार परिवारों के लोगों को इस महत्वपूर्ण कार्यक्रम का लाभ दिए जाने का दावा किया जाता है। परंतु गरीबों की संपूर्ण संख्या, गरीबी के रूपों की बदसूरत होती शक्ल आदि तथ्य इन कार्यक्रमों के प्रभाव कम करते हैं। वास्तव में इन कार्यक्रमों के लिए धनराशि जुटाने के तरीके मुद्रा-स्फीति को बढ़ावा देते हैं और सरकारी खर्च में ब्याज के भुगतान का अनुपात बढ़ाते हैं और इन कार्यक्रमों के अपेक्षित परिणामों के विपरीत प्रभावों को जन्म देते हैं।

हमारे यहां इन कार्यक्रमों के मूल्यांकन करने के अधिकांश प्रचलित तरीके एक बहुत संकीर्ण तथा गैर-वैज्ञानिक नजरिया अपनाते हैं। यह नजरिया पूरी तरह क्षेत्रीय या स्थानीय होता है और पूरी सामाजिक-आर्थिक प्रक्रिया के एक छोटे-से टुकड़े का खंडित, कटा-छंटा जायजा लेता है। इनके तहत यह पूछा जाता है कि क्या कुछ परिसंपत्तियां सस्ते

ब्याज की दर पर और कुछ सब्सिडी के साथ मिलने से प्राप्तिकर्त्ता की माली हालत में कुछ सुधार हुआ है और यदि हां, तो कितना? लेकिन ऐसे सवालों को बहुत कम अध्ययन उठाते हैं जैसे कि क्या ये बांटी गई परिसंपत्तियां विद्यमान परिसंपत्तियों का (चाहे गाय, भैंस, बकरी हो अथवा कोई सिलाई मशीन आदि) ही एक भाग है जो पुनर्वितरित कर दी गई हैं, अथवा इनकी मात्रा में वृद्धि हुई है? क्या लाभार्थियों के पास पर्याप्त स्थान, पूंजी, विपणन व्यवस्था आदि का जुगाड़ है? क्या वे इन कामों में दक्ष अथवा प्रशिक्षित हैं? स्थानीय अर्थ व्यवस्था तथा बाजार की स्थिति को ध्यान में रख कर भी इन कार्यक्रमों का मूल्यांकन नहीं होता है। ये तदर्थ स्कीमें स्थानीय समन्वित विकास योजनाओं का भाग शायद ही कभी बन पाई हों। केवल लाभार्थियों के चयन में स्थानीय जनता की भागीदारी, 'विकास' में जन भागीदारी की अवधारणा की 'केरीकेचर' यानी बहुरूपियेनुमा स्वांग भर है। कई अति लघु उद्यम स्थानीय बाजार की संकीर्णता तथा बड़े क्षेत्रीय बाजार में नहीं पहुंच पाने की क्षमता अथवा अत्यधिक, गैर-बराबरीपूर्ण, प्रतियोगिता के कारण सफल नहीं हो पाते हैं। कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि ग्रामीण विकास की परिकल्पना, रणनीति, नीतिगत आधार, परिचालन पद्धतियां तथा मूल्यांकन और उस पर आधारित पुनर्संरचना के तरीके आर्थिक वृद्धि की, उत्पादन वृद्धि की अवधारणा के अंग अथवा उसी पर आधारित विशिष्ट रचनाएं हैं। आर्थिक वृद्धि को विकास का पर्याय अथवा पूर्व शर्त मानना कितना त्रुटिपूर्ण, एकांगी तथा निहित स्वार्थों का समर्थक तरीका है—यह विकास के समालोचनात्मक साहित्य में बखूबी बताया जा चुका है। हम अभी भी इस वैचारिक लाश को ढो रहे हैं तथा ऐसे पेटरनेस्टिक, माई-बाप मनोवृत्ति के कार्यक्रमों को चला रहे हैं, यह आश्चर्य की बात ही है।

सब गरीबों को एक समयबद्ध सीमा में क्रमशः चरणबद्ध रूप में, गरीबी के मूल कारणों से मुक्त करने, क्षमता तथा सामूहिक शक्ति से सम्पन्न करने के कार्यक्रम नहीं बनाए जाते हैं। केवल गरीबों की एक संख्या को, उनके एक हिस्से को, एक मात्रात्मक टारगेट को गरीबी के दुष्प्रभावों से आंशिक निजात दिलाने की तजवीज की जाती है। इस तरह गरीबी निवारण नीतियां सम्पन्न तथा सत्तासीन लोगों की एक विलासितापूर्ण, खर्चीली, बेअसर मजबूरी बन जाती है।

इन कार्यक्रमों की एक अन्य मूलभूत कमी की चर्चा करना भी जरूरी है। हमने जिस दिशा-दृष्टि से इन कार्यक्रमों और नीतियों पर विचार किया है, वह इस चर्चा के बिना अधूरी ही रहेगी।

हमारी विकास की नीति और योजना गरीबी तथा पिछड़ेपन का गतिमय, परिवर्तनशील रूप नहीं समझ पाई। समाज की शक्ति, सत्ता तथा क्षमता का विद्यमान स्वरूप बदले बिना विकास तथा गरीबी दूर करने की दिशा में प्रभावी और निर्णायक कदम नहीं उठाए जा सकते। मात्र बढ़त तथा आंशिक रूप से, खंड-खंड में, एक समय-सीमा-विहीन और दूसरों के अनुभव के अंधानुकरण पर आधारित परिवर्तन विकास का रास्ता प्रशस्त नहीं कर सकते। ऐसे परिवर्तनों के कारण तो मर्ज बढ़ता ही जाता है, ज्यों-ज्यों दवा की। होता यह है कि साधन-संपन्न तथा शक्तिशाली देसी-परदेसी तबकों में 'विकास' अथवा बढ़त को लेकर छीना-झपटी और संघर्ष बढ़ जाता है। लाभों तथा अवसरों पर ज्यादा से ज्यादा आधिपत्य जमाने की कोशिशों के साथ-साथ त्याग तथा लागत दूसरों पर खिसका देने की प्रवृत्ति बढ़ती है। तथाकथित विकास की ऐसी राजनीति तथा कूटनीति में तरह-तरह के लुभावने वायदे तथा बिचौलिए की एक सेना बनाकर उनकी मध्यस्थता द्वारा बहुसंख्यक गरीब जनता को एक खोखले ढांचे के तहत ये विभिन्न संपन्न वर्ग तथा तबके अपने-अपने राजनीतिक स्वार्थ साधने की कोशिशें करते हैं। आम जनता की अपनी पहचान के कई मुद्दे होते हैं। उनको उभार कर, उकेर कर, उनके हित की लुभावनी योजनाएं और स्कीमें बना कर ऐसी विकास प्रणाली को बढ़ाने की कोशिश की जाती है जिसमें दूर-दूर तक नजर आने वाले तथा अर्थवान भविष्य में गरीबों, दलितों तथा वंचितों की उपस्थिति तथा उनके 'हित' के कार्यक्रमों की लगातार उपस्थिति एक अनिवार्यता बन जाती है। गरीबी निवारक कार्यक्रम और नीतियां इस तरह के सत्ता-संतुलन और परिप्रेक्ष्य में इसलिए नहीं बनाए जाते हैं कि गरीबी दूर हो और आज के गरीब कल सक्षम और समर्थ बन कर इन कार्यक्रमों, नीतियों और सत्तासीन लोगों पर आश्रित होने, उनके कृपापात्र तथा लाभार्थी बनने की विषमता से मुक्त हो जाएं। सत्ता-प्राप्ति तथा उस पर निरंतर अधिकार बनाए रखने की होड़ वाले विभिन्न राजनीतिक-सामाजिक समूह गरीबी-विरोधी कार्यक्रमों का, एक दूसरे से ज्यादा गरीब हितैषी होने की 'छवि' को अथवा मुखौटे को (इसमें कमोवेश गरीबों का दुःख दर्द बांटने तथा घटाने की भावना का समावेश होते हुए भी) चमकदार बनाने के लिए इस्तेमाल कर रहे हैं।

इस प्रवृत्ति का नतीजा है कि सब गरीबों को एक समयबद्ध सीमा में क्रमशः चरणबद्ध रूप में, गरीबी के मूल कारणों से मुक्त करने, क्षमता तथा सामूहिक शक्ति से सम्पन्न करने के कार्यक्रम नहीं बनाए जाते हैं। केवल गरीबों की एक संख्या को, उनके एक हिस्से को, एक मात्रात्मक टारगेट को गरीबी के दुष्प्रभावों से आंशिक निजात दिलाने की तजवीज की जाती है। इस तरह गरीबी निवारण नीतियां सम्पन्न तथा सत्तासीन लोगों की एक विलासितापूर्ण, खर्चीली, बेअसर मजबूरी बन जाती है। इसलिए सबको क्रमशः चरणबद्ध तरीके से एक न्यूनतम सुविधा, सम्मान, क्षमता, अधिकार देने के लिए जरूरी नीतियों, कार्यक्रमों, राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक संस्थागत परिवर्तनों का समन्वित, विकेंद्रित, जन भागीदारी तथा निर्णय शक्ति के तहत प्रचलन, संचालन तथा प्रभावी क्रियान्वयन वास्तविक, संपूर्ण, समन्वित तथा सर्वहितकारी विकास की पहली शर्त है। हमारी योजनाओं, नीतियों, कार्यक्रमों, संस्थागत तथा ढांचागत संरचना का आज मात्र एकमेव ध्येय होना चाहिए—गरीबी के कारणों पर सीधा प्रहार तथा गरीबों के सामूहिक स्वशक्तिकरण की व्यवस्था की नींव रखना। जब तक दूसरे ध्येय हमारे सामने खड़े रहेंगे और गरीबी संबंधी लक्ष्य उस भीड़ का एक अंग बना रहेगा, तब तक गरीबी-निवारण एक छलावा बना रहेगा।

जब तक हम रिसते घावों की मात्र मरहम-पट्टी करते रहेंगे, ताकि हमारी करुणामय मूर्ति अथवा छवि बने, ताकि हम गरीबों द्वारा जय-

जयकार सुनते रहें, तब तक गरीबी-विरोधी कार्यक्रम वस्तुत: गरीब-विरोधी बने रहेंगे वास्तविक तथा दूरगामी अर्थों में। इन कार्यक्रमों को सांकेतिक, ऊपर से नीचे की ओर चलना, दलालों और बिचौलियों से भरे उपक्रमों के रूप में हजारों लाखों करोड़ रुपये को स्वाहा करने वाले रूपों में चलाना हमारी तथा अन्य अनेक देशों और व्यवस्थाओं की ऐतिहासिक नियति रहा है। कई मजबूत सामाजिक ताकतें इस सोच की जनक रही हैं। इस धरोहर से मुक्ति तथा नई सोच का क्रियान्वयन व्यापक जन-चेतना तथा जन-संगठन के बिना संभव नहीं लगता है।

क्यों और कैसे बने ऐसे गरीबी-निवारक कार्यक्रम और नीतियां जिनका प्रभाव सब पर एक-समान, एक-स्थिति वाले गरीबों तक एकमुश्त हो, उनमें किसी सत्ताधीश को कुछ का चयन करने और कुछ को बाहर रख छोड़ने का अधिकार न हो? वस्तुत: ऐसे संस्थापक परिवर्तन होना लाजमी हैं जो गरीबी-विरोधी कार्यक्रमों और परियोजनाओं को फिर-फिर अपनों में रेवड़ियां बांटने वाले कार्यक्रमों में नहीं बदल डाले। संसाधनों का अभाव इन कार्यक्रमों को सब तक नहीं फैलाने का बहुधा बताया जाने वाला कारण है। क्या यह सही है? राजनीति, अर्थनीति, समाज व्यवस्था और कूटनीति में हम कब, कहां और किस सीमा तक संसाधनों की कमी को आड़े आने देते हैं, हमसे कई गुना धनी देशों के बराबर के मानदंड राजनेताओं, प्रशासकों तथा व्यवसायियों के वेतन, आय, मुनाफे तथा सुविधाओं आदि को बनाए रखने में? हमारा राजनीतिक, सार्वजनिक क्षेत्र, निजी, निगमित क्षेत्र प्रशासनिक तथा अन्य कुशल व्यावसायिक सेवाओं वाला वर्ग, हमारे आम आदमी के जीवन से सैंकड़ों-हजारों गुना बेहतर और समृद्धतम देशों के तुलनीय तबकों और लोगों के समकक्ष ऐशो-आराम सार्वजनिक खर्च के आधार पर हथियाने में तनिक भी नहीं हिचकिचाता। उनकी सरकारी खर्च पर पानी की तरह पैसा बहाने की प्रवृत्ति आम आदमी के प्रतिनिधित्व के उनके दावे का क्रूर और अक्षम्य मजाक बना चुकी है। फिर यह संसाधनों की कमी का रोना केवल गरीबों के लिए क्यों? हम एकमुश्त आवश्यक तथा संभव सेवाओं, सुविधाओं, अधिकारों तथा संसाधनों पर नियंत्रण सभी गरीबों को एक साथ, कल-परसों ही उपलब्ध कराने की नीति की पैरवी नहीं कर रहे हैं। जरूरत है क्रमिक रूप से सुधरने वाला, उन्नत होता, सम्भावित न्यूनतम स्तर अलग-अलग चरणों में एक ही समय-सीमा में सबको, हां, सबको उपलब्ध कराने की योजनाओं तथा नीतियों की। यह समय-सीमा भी सार्थक होनी चाहिए। बादलों में अटके चांद के सपने की सी नहीं और न ही पानी भरी थाली में चांद की परछाईं सी। निश्चित है यह हमारी दिशा-दृष्टि और प्राथमिकताओं के पुनर्निधारण और हमारी वर्तमान सोच में गुणात्मक परिवर्तन की मांग है। परंतु बिना ऐसे बड़े कदमों के, ऐसे साहसिक कदमों के, ऐसे गैर-परम्परावादी कदमों के या भूली-बिसरी परम्पराओं के नवीनीकरण के बिना युगों-युगों से जारी ऐसे सवालों के बोझ से उबरा नहीं जा सकता। ❑

कितनी कारगर हैं ग्रामीण विकास योजनाएं

सत्यवीर त्यागी *

गांवों से शहरों की ओर जनसंख्या के लगातार हो रहे पलायन के बावजूद अब भी हमारी 70 प्रतिशत से ज्यादा आबादी गांवों में ही है। इसलिए यह स्वाभाविक और जरूरी है कि देश के सर्वांगीण विकास के लिए गांवों को समृद्ध बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया जाए और ग्रामीण क्षेत्र के विकास के कार्यक्रमों को उच्च प्राथमिकता दी जाए। देश को आजादी मिलने के बाद सरकार ने योजनाबद्ध विकास का जो रास्ता अपनाया, उसमें गांवों के लोगों की हालत में सुधार लाने के कार्यक्रमों को शुरू से ही प्राथमिकता दी गई। अब तक की सभी पंचवर्षीय योजनाओं में गांवों के समग्र विकास पर जोर दिया गया। इसमें कोई शक नहीं कि पिछले पचास सालों में किए गए प्रयासों से काफी प्रगति हुई है। कृषि गांवों की अर्थ व्यवस्था की ही नहीं, हमारे देश की अर्थ व्यवस्था की भी रीढ़ है। पिछले पांच दशक में कृषि के क्षेत्र में जो प्रगति हुई, उस पर हम गौरवान्वित हो सकते हैं। आम आदमी का जीवन-स्तर उन्नत हुआ है, लेकिन अभी भी स्थिति ऐसी नहीं है कि हम संतुष्ट होकर बैठ जाएं।

स्वतंत्रता-प्राप्ति के समय की स्थिति

पराधीनता के लंबे दौर में भारत के गांवों की बिल्कुल उपेक्षा हो गई थी जिससे देश की अर्थ व्यवस्था तो जर्जर हुई ही, ग्रामीण भारत में गरीबी और बेरोजगारी ने स्थायी डेरा डाल लिया था। जब देश आजाद हुआ, तब गांवों में शिक्षा, स्वास्थ्य, आवास और पीने के पानी जैसी बुनियादी सुविधाओं का नितांत अभाव था। गांवों की आबादी का बहुत बड़ा हिस्सा भुखमरी और कुपोषण का शिकार था। लोगों को तन ढकने के लिए कपड़े और रहने को छत मयस्सर नहीं थी। यातायात के साधनों का अभाव था, जिससे गांवों के विकास के रास्ते अवरुद्ध से थे। यह स्थिति भयावह और दुखमई थी जिसे स्वतंत्रता-प्राप्ति के बाद सरकार ने एक बड़ी चुनौती के रूप में लिया और गरीबी तथा बेरोजगारी दूर करने के लिए प्रभावी कार्यक्रम शुरू किए। पिछले पांच दशक में लगभग सभी पंचवर्षीय योजनाओं में कृषि एवं ग्रामीण विकास को प्राथमिकता दी गई और इस क्षेत्र के लिए बड़े पैमाने पर धनराशि जुटाई गई। इससे स्थिति में बदलाव आया है और 1947 में गांवों में जो हालात थे, अब वैसे नहीं हैं। देश विकास की राह पर काफी आगे बढ़ा है। ग्रामीण भारत में भी विकास की झलक स्पष्ट दिखाई देती है। गांवों में प्राथमिक स्कूलों तथा प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों का जाल है। सड़क संपर्क भी बढ़ा है। बिजली और पीने का पानी उपलब्ध कराने में भी सफलता मिली है।

प्रगति के चिह्न

सबसे ज्यादा उल्लेखनीय प्रगति कृषि के क्षेत्र में हुई है जिससे अनाज के मामले में देश आत्मनिर्भर हो गया है। यह प्रत्येक भारतवासी के लिए गर्व की बात है। कृषि तथा कृषि सहायक क्षेत्रों में अब गांवों के लोगों के लिए रोजगार के अवसरों में भी कई गुना बढ़ोतरी हुई है। गरीबी और बेरोजगारी के प्रभाव में अपेक्षाकृत कमी आई है। कुल मिलाकर देश के ग्रामीण क्षेत्र में भी लोगों के जीवन-स्तर में गुणात्मक बदलाव आया है। प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा की सुविधाओं के विस्तार का नतीजा यह है कि अब डाक्टरों, इंजीनियरों, प्रौद्योगिकी विशेषज्ञों और प्रशासनिक सेवाओं में चुने जाने वाले युवकों में गांवों की पृष्ठभूमि से आए नौजवानों की अच्छी-खासी संख्या देखकर खुशी होती है। पहले चिकित्सा सुविधा के अभाव में मलेरिया, चेचक, क्षयरोग से गांवों में बड़ी संख्या में लोग अकाल काल के ग्रास बन जाते थे। इन बीमारियों पर अब काफी हद तक काबू पा लिया गया है। शिशु मृत्यु दर में गिरावट आई है।

धीमे विकास के कारण

लेकिन पचास सालों में हुई प्रगति और उपलब्धियों से भी स्थिति पूरी तरह संतोषजनक क्यों नहीं बन पाई? गरीबी और बेरोजगारी आज भी हमारे योजनाकारों की प्रधान चिंता क्यों बनी हुई है? अरबों रुपये खर्च करके भी देश की जनसंख्या के काफी बड़े हिस्से को पीने का पानी, बिजली, आवास और रोजगार के अवसर मुहैया क्यों नहीं कराए जा सके हैं? गांवों से शहरों की ओर बेरोजगार और बदहाल लोगों का पलायन आज भी क्यों जारी है? गांवों से उजड़े ये लोग शहरों में झुग्गी और स्लम बस्तियों में नारकीय जीवन जीने के लिए क्यों अभिशप्त हैं। गांव से शहर की ओर पलायन की इस मजबूरी और गरीबी तथा बेरोजगारी की समस्या पर काबू न हो पाने का सबसे बड़ा कारण जनसंख्या में बेतहाशा वृद्धि है।

* पूर्व ब्यूरो चीफ हिन्दुस्तान

जनसंख्या विस्फोट ने पिछले पांच दशकों की उपलब्धियों पर पानी फेर दिया है। नतीजा यह है कि अनाज के मामले में करीब चार गुणा से ज्यादा बढ़ोतरी के बावजूद आबादी के एक हिस्से को आज भी दो जून का खाना मुश्किल से नसीब होता है। आजादी के समय देश की आबादी 36 करोड़ थी। तब अनाज का उत्पादन पांच करोड़ टन था। अब अनाज का उत्पादन लगभग चार गुना बढ़कर 19 करोड़ टन से ज्यादा है। पर परिवार नियोजन के मोर्चे पर नाकामयाबी के कारण भारत की जनसंख्या भी बढ़कर 96 करोड़ को पार कर गई है। अगली शताब्दी में पहुंचते-पहुंचते हमारी जनसंख्या एक अरब हो जाएगी। जनसंख्या नियंत्रित न हो पाना चिंता की बात है।

अगले दशक में खाद्यान्न की मांग को पूरा करने के लिए भी कृषि के मोर्चे पर नई रणनीति बनानी पड़ेगी। खाद्यान्न के मामले में हमारी खुशहाली का एक कारण पिछले सात-आठ साल से देश में लगातार मानसून का अच्छा होना भी रहा है। लेकिन अगले सालों में कृषि उत्पादन बढ़ाने के लिए न केवल कुल बुआई क्षेत्र का विस्तार करना होगा बल्कि सिंचाई के साधन भी बढ़ाने होंगे। नौवीं पंचवर्षीय योजना में कृषि उत्पादन की दर बढ़ाकर 4.5 प्रतिशत करने का लक्ष्य रखने का प्रस्ताव है ताकि सन् 2001 तक 20 करोड़ 30 लाख टन और 2011 तक 30 करोड़ 40 लाख टन खाद्यान्न उत्पादन हो सके और देश में सबको भरपेट भोजन उपलब्ध कराया जा सके। सरकार इस दिशा में प्रयत्नशील है। वित्त मंत्री ने इस साल के अपने बजट भाषण में कृषि एवं ग्रामीण अर्थ व्यवस्था की स्थिति और उसकी गतिशीलता को भारत की अर्थ व्यवस्था तथा सामाजिक विकास की धुरी बताया है और कृषि उत्पादन बढ़ाने पर बल दिया है।

कृषि उत्पादन बढ़ाने में सबसे अहम भूमिका सिंचाई के साधनों की रही है। हरित क्रांति उन्नत किस्म के बीजों, उर्वरकों और तकनीक के इस्तेमाल, किसानों की मेहनत तथा सबसे ज्यादा सिंचाई के साधन बढ़ने का सुफल है। आजादी के बाद से अब तक देश में सिंचित क्षेत्र में चार गुना वृद्धि हुई है। 1947 में 2 करोड़ 26 लाख हेक्टेयर भूमि के लिए ही सिंचाई की सुविधा थी। पांच दशकों में लघु, मध्यम और बड़ी सिंचाई परियोजनाओं पर 91,743 करोड़ रुपये खर्च कर लगभग साढ़े नौ करोड़ हेक्टेयर खेती की भूमि के लिए सिंचाई का बंदोबस्त किया जा चुका है जो एक बड़ी उपलब्धि है। लेकिन अब भी हमारे कृषि योग्य क्षेत्र का केवल 37 प्रतिशत ही आश्वस्त सिंचाई के अंतर्गत है। इससे स्पष्ट है कि सिंचाई की सुविधा बढ़ाने से कृषि उत्पादन बढ़ाना आसान हो जाएगा। देश का वह बड़ा भाग जहां वर्षा पर निर्भर रहकर साल में मुश्किल से एक फसल ली जाती है, वहां दो और तीन फसलें पैदा की जा सकेंगी। इसके लिए नौवीं योजना अवधि में जल प्रबंधन के लिए प्रभावी कार्यनीति पर अमल करना होगा और वन संरक्षण पर विशेष ध्यान देकर कृषि योग्य भूमि को नदियों की बाढ़ और कटाव से बचाना होगा। बंजर पड़ी करोड़ों एकड़ भूमि को कृषि योग्य बनाने के लिए भी बड़े अभियान की जरूरत है। इन कामों में बड़ी संख्या में ग्रामीणों को रोजगार भी उपलब्ध किया जा सकेगा। देश के जिन राज्यों में हरित क्रांति का असर नहीं हुआ है, उनमें खासकर पूर्वी क्षेत्र में कृषि के विकास की ओर विशेष ध्यान देने की जरूरत है। सरकार इस दिशा में अब प्रयास कर रही है।

ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का लेखा-जोखा करते हुए यह बात स्पष्ट हुई है कि जनता का कार्यक्रमों से सीधा जुड़ाव न होने से विकास कार्यक्रमों में वांछित सफलता नहीं मिली। सरकारी तंत्र के सहारे ही कार्यक्रमों पर अमल कराने की नीति से जहां भ्रष्टाचार बढ़ा और कार्यक्रमों के लिए निर्धारित राशि का बड़ा हिस्सा बिचौलियों की जेब में चला गया।

ग्रामीण विकास के लिए नई नीति

योजनाबद्ध विकास का मुख्य उद्देश्य गरीबी उन्मूलन और समाज के हर वर्ग के लोगों के लिए जीवन की बुनियादी जरूरतें मुहैया करना है। इस उद्देश्य की पूर्ति में कृषि क्षेत्र का विकास सबसे अहम भूमिका निभाता है और निभाता रहेगा। लेकिन कई कारणों से कृषि के क्षेत्र में हुई प्रगति के अनुरूप देश में, खासकर ग्रामीण क्षेत्र में, गरीबी उन्मूलन नहीं हो पाया। पिछले पांच दशक में कृषि उत्पादन चार गुना बढ़ा, पर गरीबों की संख्या में उसी अनुपात में कमी नहीं आई। 1973-74 में देश में गरीबी की रेखा से नीचे जीवन-यापन करने वाली आबादी का आकलन करने पर पाया गया कि तब 54.9 प्रतिशत अर्थात 32 करोड़ 10 लाख आबादी गरीबी की रेखा से नीचे गुजारा कर रही थी। 1993-94 में गरीबी की रेखा के नीचे की आबादी का प्रतिशत गिर कर 36 प्रतिशत तक आ गया, लेकिन तब भी कुल गरीब आबादी में ज्यादा फर्क नहीं पड़ा। अगर ग्रामीण क्षेत्र में 1973-74 में 26 करोड़ लोग गरीबी की रेखा के नीचे थे तो बीस साल बाद 1993-94 में भी ज्यादा फर्क नहीं हुआ और गांवों में गरीबी की रेखा से नीचे की आबादी 24 करोड़ 40 लाख बनी रही। जाहिर है कि भूमि सुधारों पर सभी राज्यों में प्रभावी अमल न होने से हरित क्रांति का फायदा गांवों में सबको नहीं मिल पाया। भूमिहीन मजदूर घाटे में ही रह गए। गांवों में रोजगार के पर्याप्त अवसर न बढ़ने से गांवों में बड़ी तादाद में आबादी की क्रय शक्ति में भी बढ़ोतरी नहीं हुई। गांवों में गरीबों के इस बड़े वर्ग के रहने के लिए आवास की समस्या भी विकट ही बनी हुई है। गरीबों की बस्तियों में पीने के पानी तथा सफाई व्यवस्था का भी प्रायः अभाव देखा जाता है। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर अमली की धीमी रफ्तार के मद्देनजर पिछले दो दशक से सरकार ने गांवों के सर्वांगीण विकास के लिए नई और समन्वित रणनीति अपनाई। ऐसे कई कार्यक्रम शुरू किए गए जिनमें गरीबी उन्मूलन के साथ-साथ ग्रामीण क्षेत्रों में आधारभूत ढांचा तैयार करने तथा आवास, पीने के पानी, बिजली, संपर्क सड़क और प्राथमिक शिक्षा तथा स्वास्थ्य सेवाएं उपलब्ध करने पर जोर दिया गया है। गरीबी उन्मूलन के कार्यक्रमों का मुख्य उद्देश्य गांव के गरीबों, खासकर नई पीढ़ी के नौजवानों को अपने पैरों पर खड़े होने के अवसर प्रदान करना है। नई रणनीति के तहत पिछले डेढ़ दशक में देश के पांच करोड़ परिवारों को ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का लाभ मिल चुका है।

समन्वित ग्रामीण विकास कार्यक्रम 2 अक्तूबर 1980 को शुरू किया गया। इस कार्यक्रम के आरंभ से 1996-97 तक 9,670 करोड़ रुपये गांव

के कमजोर वर्ग के लोगों को सब्सिडी के तौर पर वितरित किए गए हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीयकृत बैंकों से 18,378 करोड़ रुपये का ऋण दिया गया है। इस कार्यक्रम के तहत शुरू में प्रति परिवार सहायता राशि 1,642 रुपये दी जाती थी। अब इसे बढ़ाकर 15 हजार रुपये कर दिया गया है। इस कार्यक्रम का व्यापक असर हुआ। 1992 में किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार जिन परिवारों को इस कार्यक्रम के तहत मदद दी गई, उनमें से 54 प्रतिशत परिवारों ने गरीबी रेखा को पार कर लिया था। लोगों ने सब्सिडी राशि तथा बैंकों से नाममात्र को ब्याज दर पर उपलब्ध ऋण राशि से स्वरोजगार शुरू कर अपनी आमदनी बढ़ाई।

सरकार के प्रयास

गांवों में बेघर या झोपड़ियों में रहने वाली आबादी को मकान उपलब्ध करने के लिए भी सरकार ने आजादी के बाद से ही प्रयास शुरू किए। आरंभ में सामुदायिक विकास के कार्यक्रमों के तहत ग्रामीण आवास योजना शुरू की गई। लेकिन संसाधनों की कमी के कारण 1980 तक इस योजना के तहत सिर्फ 67 हजार मकान ही उपलब्ध कराए जा सके। इस कार्यक्रम को ज्यादा कारगर तरीके से चलाने के लिए 1985 में इंदिरा आवास योजना शुरू की गई। 1996 तक यानी ग्यारह वर्षों में इस योजना के तहत 37 लाख 15 हजार मकान कमजोर वर्ग के लोगों को आबंटित किए गए। इस पर 5,000 करोड़ रुपये खर्च हुए। लेकिन गांवों में आवास की समस्या इतनी व्यापक है कि अब भी ग्रामीण क्षेत्र में लगभग ढाई करोड़ मकानों की कमी है। इंदिरा आवास योजना के कार्यान्वयन में अनियमितताओं के कारण भी वांछित परिणाम हासिल नहीं हुए हैं। यही हाल ग्रामीण क्षेत्र में गांवों को जोड़ने वाली सड़कों के निर्माण और उनके रख-रखाव की स्कीमों का है। पांचवीं पंचवर्षीय योजना में यह संकल्प किया गया था कि जिन गांवों की आबादी डेढ़ हजार या इससे ज्यादा है, उन्हें सड़कों से जोड़ा जाएगा। लेकिन यह लक्ष्य पूरा नहीं हुआ। 1992 तक ऐसे 65 प्रतिशत गांवों को ही सड़कों से जोड़ा जा सका है। आठवीं योजना अवधि में एक लाख 30 हजार ऐसे गांवों को, जिनकी आबादी एक हजार या उससे अधिक है, सड़क से जोड़ने का लक्ष्य था। लेकिन सिर्फ 85 प्रतिशत लक्ष्य ही प्राप्त किया जा सका है। 1989 में शुरू की गई जवाहर रोजगार योजना के तहत भी ग्रामीण क्षेत्रों में सड़कों के निर्माण के काम पर विशेष ध्यान दिया गया। इस योजना में पहले से चल रहे दो कार्यक्रमों—राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार कार्यक्रम तथा ग्रामीण भूमिहीन रोजगार गारंटी कार्यक्रम का समावेश किया गया। इसके लिए अब हर साल लगभग दो हजार करोड़ रुपये का प्रावधान किया जा रहा है। सड़क निर्माण कार्य को बढ़ावा देने के अलावा इस योजना के तहत गांव के बेरोजगार तथा अल्प-रोजगार प्राप्त लोगों को काम मुहैया कर गांवों में जरूरी बुनियादी सुविधाओं का स्तर उन्नत किया जा रहा है। ग्रामीण महिलाओं में गरीबी उन्मूलन के लिए डवाकरा और ग्रामीण युवकों को तकनीकी जानकारी देकर स्वरोजगार चलाने हेतु सक्षम बनाने के उद्देश्य से ट्राइसेम जैसे कार्यक्रम शुरू किए गए हैं। पिछले दस साल से सीमांत किसानों को सिंचाई में मदद देने के उद्देश्य से दस लाख कुंएं बनाने की योजना शुरू की गई है। इसका अनुसूचित जाति और जनजाति के लोगों को ज्यादा लाभ मिल रहा है। 1996-97 के दौरान इस कार्यक्रम के तहत 1,08,897 कुंओं का निर्माण किया गया। 1997-98 के बजट में इस काम के लिए 373 करोड़ रुपये का प्रावधान था। वर्ष के दौरान 452 करोड़ रुपये खर्च करके 92,689 कुंओं का निर्माण किया गया। वर्ष 1998-99 के बजट में इस मद के लिए 450 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है।

ग्रामीण क्षेत्र में पीने का स्वच्छ पानी उपलब्ध करने की ओर सरकार ने पहली पंचवर्षीय योजना से ही ध्यान दिया है। 1986 में राजीव गांधी राष्ट्रीय पेयजल मिशन कायम कर इस समस्या के समाधान के लिए जोर-शोर से काम हुआ। आठवीं योजना की अवधि पूरी होने तक सभी ग्रामीण बस्तियों में पीने के पानी की व्यवस्था करने का लक्ष्य रखा गया था। गांवों में पीने के पानी की व्यवस्था के लिए अब तक कई हजार करोड़ रुपये खर्च हो चुके हैं। 1997-98 में इस कार्यक्रम के लिए 1,302 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया था।

जरूरत इस बात की है कि विकास की लंबी और जटिल राह पर तेजी से आगे बढ़ने के लिए देश में आजादी के संघर्ष जैसी भावना जाग्रत हो। सर्वांगीण विकास के लिए—दूसरी आजादी यानी आर्थिक आजादी के इस संघर्ष में सहकारी संघवाद की भावना उभारकर केन्द्र, राज्य सरकारें, पंचायती राज संस्थाएं, निजी क्षेत्र के उद्योग तथा गैर-सरकारी संगठन एकजुट होकर आगे बढ़ें और अगले पंद्रह-बीस साल की जरूरतों और मांगों को ध्यान में रखकर समस्याओं से जूझें।

खामियां और सुझाव

कुल मिलाकर देखें तो भारत में ग्रामीण विकास की तसवीर निराशाजनक नहीं है, पर उस पर संतुष्ट होकर प्रयासों में ढील भी नहीं दी जा सकती। असल में विकास के कार्यक्रम एक सतत् प्रक्रिया है। देश में जनसंख्या वृद्धि दर में कोई कमी न होने के कारण यह और भी जरूरी है कि ग्रामीण क्षेत्र के विकास के कार्यक्रमों को और ज्यादा मुस्तैदी से चलाया जाए। इस बात पर पूरा ध्यान दिया जाए कि उनके लिए निर्धारित राशि का दुरुपयोग न हो। ग्रामीण विकास कार्यक्रमों का लेखा-जोखा करते हुए यह बात स्पष्ट हुई है कि जनता का कार्यक्रमों से सीधा जुड़ाव न होने से विकास कार्यक्रमों में वांछित सफलता नहीं मिली। सरकारी तंत्र के सहारे ही कार्यक्रमों पर अमल कराने की नीति से जहां भ्रष्टाचार बढ़ा और कार्यक्रमों के लिए निर्धारित राशि का बड़ा हिस्सा बिचौलियों की जेब में चला गया। कार्यक्रमों में जनता की सहभागिता न होने से लोगों ने पीने के पानी, बिजली, सफाई योजना, संपर्क सड़क आदि को सरकार से प्राप्त खैरात मान लिया। न तो उनके रख-रखाव में कोई सहयोग दिया और न ही इन सुविधाओं की गुणवत्ता सुनिश्चित करने के लिए सामुदायिक निरीक्षक की व्यवस्था विकसित की।

1993 से संविधान में 73वां संशोधन कर देश में पंचायती राज संस्थाओं को अधिकार-सम्पन्न करके प्रभावी बनाया गया है। अपेक्षा की जाती है

कि पंचायती राज संस्थाएं विकास कार्यक्रमों पर अमल में सबसे अहम भूमिका निभाएंगी। लेकिन देश में दलगत राजनीति की जो दशा है, उसी का विद्रुप पंचायती राज संस्थाओं में उभर रहा है। उनमें भी निष्ठावान और उत्साही कार्यकर्ता पीछे रह गए हैं। अक्षम और भ्रष्ट तत्वों का उन पर भी कब्जा होता जा रहा है। पंचायतों और सहकारी आंदोलन ने कुछ राज्यों में ही, खासकर महाराष्ट्र, गुजरात, कर्नाटक में ग्रामीण विकास के लिए उल्लेखनीय काम किया है। जरूरत इस बात की है कि विकास की लंबी और जटिल राह पर तेजी से आगे बढ़ने के लिए देश में आजादी के संघर्ष जैसी भावना जाग्रत हो। सर्वांगीण विकास के लिए—दूसरी आजादी यानी आर्थिक आजादी के इस संघर्ष में सहकारी संघवाद की भावना उभारकर केन्द्र, राज्य सरकारें, पंचायती राज संस्थाएं, निजी क्षेत्र के उद्योग तथा गैर-सरकारी संगठन एकजुट होकर आगे बढ़ें और अगले पंद्रह-बीस साल की जरूरतों और मांगों को ध्यान में रखकर समस्याओं से जूझें। आजादी के बाद के कुछ सालों में सामुदायिक विकास कार्यक्रमों के तहत गांवों-कस्बों में जन-सहयोग जुटाकर कुछ कार्यक्रमों पर अच्छा अमल हुआ था। श्रमदान से सड़कें और प्राथमिक स्कूल की इमारतें बनीं, कुंएं खोदे गए। तब राष्ट्रीय नेता श्रमदान के लिए गांवों में जाकर लोगों को प्रोत्साहित करते थे। कालांतर में यह भावना विलुप्त हो गई। अब तो गांव के लोग अपने गांव-मुहल्ले के दगड़ों के गड्ढे ठीक करने या सरकार द्वारा लगाए गए हैंड पम्पों की मरम्मत करने की तकलीफ तक उठाना नहीं चाहते। इस स्थिति को बदलने के लिए सामुदायिक प्रयास करने की भावना जाग्रत करना आज बहुत जरूरी है।

विकास के मामले में ग्रामीण क्षेत्र के पिछड़े रहने का एक कारण सरकार द्वारा प्राथमिकताओं के निर्धारण में भारी गड़बड़ी करना रहा है। योजनाबद्ध विकास की प्रक्रिया में सामाजिक क्षेत्र की उपेक्षा की जाती रही है। शुरू में संसाधनों की कमी की वजह से ऐसा हुआ। पर बाद के वर्षों में भी इस तरह की उपेक्षा, खासकर ग्रामीण क्षेत्र में बुनियादी सुविधाएं उपलब्ध करने में हुई लापरवाही, अक्षम्य है। अब देश में वित्तीय संसाधनों की वैसी किल्लत नहीं है। औद्योगिक आधार मजबूत हुआ है। राष्ट्रीय विकास के सभी प्रयासों को अधिक मानववादी स्वरूप देने के लिए अब आर्थिक सुधार की प्रक्रिया का पुनः मूल्यांकन कर नई प्राथमिकताएं तय करने की जरूरत है ताकि आजादी के पचास साल बाद भी विकास प्रक्रिया के किनारे खड़े देश के लाखों-करोड़ों लोगों को रहने को मकान, पीने का पानी और गुजर-बसर के लिए रोजगार मिल सके। अगले दशकों में खाद्यान्न की बढ़ी मांग को पूरा करने के लिए बीहड़ और बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाने तथा भूमि को नदियों के कटाव और बाढ़ से बचाने के लिए एक व्यापक अभियान शुरू करने की जरूरत है। इस अभियान में लंबे अरसे तक करोड़ों लोगों को रोजगार मुहैया किया जा सकेगा। गांवों में प्राथमिक स्कूलों और प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों में गुणवत्ता सुधार की ओर भी ध्यान दिया जाना चाहिए। गांवों के स्कूलों में टूटी-फूटी इमारतें और शिक्षकों की कमी जैसी शिकायतें आम बात है। प्राथमिक चिकित्सा केन्द्रों की हालत भी आदर्श नहीं है। ❑

(पृष्ठ 33 का शेष) ग्रामीण विकास कार्यक्रमों की हकीकत

- सरकार की कई नीतियां और कानून जैसे वन अधिनियम आदि जो गरीब विरोधी हैं जैसा कि ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय में सचिव डा. एन.सी. सक्सेना ने कहा है कि इस तरह के कानूनों का विस्तृत अध्ययन कर उनमें सुधार लाने की आवश्यकता है अन्यथा हाल यह होगा कि सरकार एक हाथ से दे रही है और दूसरे हाथ से ले रही है और नतीजा कुछ नहीं निकलेगा।

वास्तव में बीमार ग्रामीण अर्थ व्यवस्था का इलाज पंचायतों को मजबूत करने में है जिन्हें संवैधानिक दर्जा भी प्राप्त है। अगर 73वें संविधान संशोधन में संलग्न 11वीं अनुसूची, (जिसमें 29 विषय दिए गए हैं जो पंचायतों को करने हैं) को देखें तो ग्रामीण विकास और सामाजिक न्याय के लिए विषय जिनमें गरीबी उन्मूलन, मूलभूत आवश्यकताओं में शामिल है, पंचायतों की जिम्मेदारी है। वास्तव में केन्द्र द्वारा प्रायोजित स्कीमें खासतौर से जो ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन तथा मूलभूत आवश्यकताओं से संबंधित हैं, वे राज्यों को हस्तांतरित हों और राज्यों से नीचे स्तर पर संसाधनों का हस्तांतरण हो तथा उनका उचित उपयोग हो, तभी ग्रामीण अर्थ व्यवस्था में तेजी से सुधार लाया जा सकता है। ❑

(पृष्ठ 43 का शेष) भारत में ग्रामीण विकास : आजादी के पचास वर्षों के बाद

तालिका 8 : भारत में रक्षा और ग्रामीण विकास पर खर्च

(करोड़ रुपये में)

	रक्षा	ग्रामीण विकास	ग्रामीण विकास खर्च : रक्षा खर्च का प्रतिशत
1990-91	18,947	3,142	16.6
1995-96	27,656	7,718	27.9
1998-99	41,200	9,911	24.1

के 30,000 बच्चों को शिक्षा दी जा सकती है। एक अणु शक्तियुक्त सबमैरिन की कीमत पर 1,60,000,00 बच्चों को शिक्षा दी जा सकती है। एक फाइटर प्लेन की कीमत में 40,000 गांवों में स्वास्थ्य सुविधाएं उपलब्ध हो सकती हैं।

ग्रामीण विकास न होने का दूसरा मुख्य कारण भ्रष्टाचार है। ग्रामीण विकास के अवरुद्ध होने का एक मुख्य कारण सिंचाई की असुविधा है। सिंचाई की अनेक बड़ी-बड़ी योजनाएं वर्षों से पूरी नहीं की गई हैं। कार्यक्रम शुरू किए जाते हैं, फिर बीच में काम रुक जाता है और इस तरह कई दशक बीत जाते हैं। ❑

भारत
की आत्मा को
गांधीजी से बेहतर
किसी ने नहीं जाना

श्री अटल बिहारी वाजपेयी
प्रधान मंत्री

"जीवनस्तर में सुधार लाने और देश से गरीबी का अभिशाप मिटाने का सुनिश्चित मार्ग है।"

श्री वेंकटगौड़ा पाटील
पंचायत और ग्रामीण क्षेत्र विकास राज्य मंत्री (स्वतंत्र प्रभार)

"गरीबी उन्मूलन का लक्ष्य परिवर्तन, जागरूकता और लोगों की सार्थक भागीदारी बढ़ाकर हासिल किया जा सकता है।"

"मैं ऐसे भारत का निर्माण करना चाहता हूं जिसको गरीब से गरीब व्यक्ति भी अपना महसूस करे और इसके निर्माण में कारगर योगदान करे।"

"आजादी के लाभ की शुरुआत निचले स्तर के लोगों से होनी चाहिए जिससे हर गांव स्वायत्त होगा अथवा पंचायतों को अधिकार मिलेंगे"

राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का लक्ष्य था "हर आंख से आंसू पोंछना।"

इस समय भारत के समक्ष गंभीर और विकट चुनौतियां हैं। सरकार ग्रामीण निर्धनों के जीवन पर गुणात्मक प्रभाव डालने के लिए तेजी से कार्रवाई कर रही है।

भारत सरकार ने ग्रामीण विकास और गरीबी उन्मूलन के लिए 9912 करोड़ रुपये खर्च निर्धारित किया है-अभी तक इस मंत्रालय को इतना धन पहले कभी आबंटित नहीं किया गया, इससे राज्यों, वाणिज्यिक बैंकों और लाभार्थियों को भागीदारी बढ़ाने के लिए प्रेरणा मिलेगी।

महात्मा गांधी को सबसे बड़ी श्रद्धांजलि यही होगी कि हम उन कार्यों के प्रति फिर से समर्पित हों, जिनके लिए वे जीवनभर संघर्ष करते रहे और अंत में अपने प्राणों का बलिदान दिया।

लोगों की भागीदारी-पंचायती राज

- ग्राम पंचायतें वर्ष में चार पूर्व निर्धारित दिवसों पर ग्राम सभाओं की बैठकें आयोजित कर सकेंगी। पूरे देश में ये बैठकें गांधी जयंती, गणतंत्र दिवस, श्रम दिवस और स्वाधीनता दिवस के अवसर पर आयोजित की जाएंगी।
- ग्राम सभाओं को महत्वपूर्ण फैसलों के लिए अधिकार दिए गए हैं और सामाजिक निगरानी के साथ अधिक पारदर्शिता लाई गयी है।
- पंचायती राज संस्थाओं के ढांचे और कार्यप्रणाली की समीक्षा के लिए कार्यदल गठित किया गया है।

भूमि प्रबंध प्रणाली में सुधार

- भूमि संबंधी रिकार्डों के कम्प्यूटरीकरण पर विशेष बल, इस योजना का 538 जिलों में विस्तार।
- भूमि अधिग्रहण अधिनियम, 1894 में मूलभूत परिवर्तन के लिए तुरंत उपाय किए गए जिससे इसे लोगों के लिए लाभदायक बनाया गया।
- राष्ट्रीय पुनर्वास और पुनःस्थापन नीति पर सक्रियता से विचार किया जा रहा है।
- भू-कर मानचित्रों के डिजिटाइजेशन की प्रायोगिक परियोजना के लिए धन की व्यवस्था की गयी है।

बंजर भूमि विकास

- वृक्षारोपण, चरागाह विकास, बागवानी कृषि वानिकी नर्सरी लगाने और मिट्टी तथा नमी संरक्षण के जरिए बंजर भूमि विकास पर बल।
- जलसंभर विकास के लिए सामान्य दिशानिर्देश।

सुरक्षित पेय जल

- 14 लाख बस्तियों में 95 प्रतिशत लोगों को स्वच्छ पेय जल की व्यवस्था।
- जल में अतिरिक्त फ्लोराइड, आर्सेनिक और अन्य प्रदूषकों को समाप्त कर पानी की गुणवत्ता सुधारने पर बल।
- पीने के पानी की आपूर्ति सुनिश्चित करने के लिए भूमिगत जलशोधन के लिए प्रयत्न करना।
- सुरक्षित ग्रामीण जलापूर्ति और सफाई की समाज पर आधारित नई जलापूर्ति और स्वच्छता नीति।
- केन्द्र सरकार ने पीने के पानी के लिए वार्षिक योजना खर्च 13 अरब रुपये से बढ़ाकर 16 अरब 25 करोड़ रुपये किया।

लोक कार्यक्रम और ग्रामीण प्रौद्योगिकी विकास परिषद (कपार्ट)

- ग्रामीण क्षेत्रों के तीव्र विकास के लिए स्वयंसेवी संगठनों और सरकार के बीच भागीदारी को बढ़ावा दिया जा रहा है।
- ग्रामीण विकास के विस्तृत कार्यक्रमों के कार्यान्वयन में 'कपार्ट' के जरिए 6,300 से भी अधिक गैर सरकारी संगठनों को सहायता दी गयी।

सभी के लिए आवास

- राष्ट्रीय आवास नीति की घोषणा।
- सरकार का ग्रामीण क्षेत्रों में 13 लाख अतिरिक्त मकानों के निर्माण का लक्ष्य तथा गरीबी और निराश्रितों को लाभ पहुंचाने पर विशेष बल।
- ग्रामीण क्षेत्रों में आवास निर्माण के लिए बजट प्रावधान में बढ़ोतरी इस कार्य के लिए 16 अरब रुपये का प्रावधान।
- ग्रामीण क्षेत्रों में पत्थर और जंगल से संबंधित सामग्री मुफ्त नई दिल्ली देने के लिए अभियान।
- ग्रामीण क्षेत्रों में ऋण व अनुदान सहायता योजना की शुरुआत।

कृषि विपणन पर बल

- कृषि विपणन प्रणाली में विशेषज्ञता पूर्ण कदम उठाने इससे ग्रामीण क्षेत्रों में विकास कार्यों के जरिए विपणन ढांचे को सुदृढ़ बनाया गया है।

संसाधनों का बेहतर इस्तेमाल सुनिश्चित करने के लिए अधिक पारदर्शिता, लोगों की बेहतर भागीदारी, संयोजन और प्रभावी मूल्यांकन जरूरी है।

गरीबी उन्मूलन के लिए रोजगार पर बल

- स्वरोजगार कार्यक्रमों पर अधिक ध्यान केन्द्रित।
- क्षेत्र व संस्कृति विशेष के अनुरूप चुनी हुई गतिविधियों को महत्व।
- लाभार्थियों की सामूहिक गतिविधियों को प्रोत्साहन।
- कौशल विकास, प्रौद्योगिकी और बुनियादी ढांचे पर अधिक ध्यान।
- ग्रामीणों द्वारा निर्मित उत्पादों के विपणन के विशेष प्रयास।
- महिलाओं, अनुसूचित जातियों/जनजातियों के लोगों और विकलांगों पर विशेष ध्यान केन्द्रित।
- वितरण व्यवस्था—जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों का पुनर्गठन।
- जिला ग्रामीण विकास एजेंसियों द्वारा उन्नत सूचना प्रौद्योगिकी का उपयोग।
- जागरूकता और क्षमता बढ़ाने के लिए गहन प्रशिक्षण।

देशभर में मजदूरी रोजगार दिलाने पर 5600 करोड़ रुपये खर्च किए जा रहे हैं

- जवाहर रोजगार योजना की 70 प्रतिशत राशि ग्राम पंचायतों को दी जा रही है। इससे सामुदायिक व सामाजिक परिसम्पत्तियों का निर्माण होगा, जिससे लोगों के जीवनस्तर में सुधार होगा।
- ग्राम पंचायतें निर्माण-कार्यों का चयन व कार्यान्वयन करेंगी जिनमें पूर्णतः पारदर्शिता सुनिश्चित की जाएगी।
- सुनिश्चित रोजगार योजना में प्रत्येक जरूरतमंद निर्धन परिवार के दो सदस्यों को गैर-कृषि मौसम में रोजगार उपलब्ध कराया जाता है।
- जलसंभर विकास और स्थायी जलापूर्ति परिसम्पत्तियों के माध्यम से सतत रोजगार को महत्व दिया जाता है।

राष्ट्रीय सामाजिक सहायता कार्यक्रम

- राष्ट्रीय परिवार लाभ योजना में परिवार के कमाऊ सदस्य की मृत्यु होने पर अंत्येष्टि परिवार को दी जाने वाली सहायता राशि 5,000 रुपये से बढ़ाकर 10,000 रुपये की गई है।
- राष्ट्रीय मातृत्व लाभ योजना के अंतर्गत दी जाने वाली राशि को 300 रुपये से बढ़ाकर 500 रुपये कर दिया गया है।
- उड़ीसा के कोरापुट, बोलांगीर व कालाहांडी जिलों में कुपोषण पीड़ित लाभार्थियों की संख्या लगभग दुगुनी कर दी गई है।

➲ रोजगार ➲ अधिकार संपन्नता ➲ समानता ➲ शोषण-विमुक्ति

ग्रामीण क्षेत्र और रोजगार मंत्रालय
भारत सरकार

क ार पंजीकरण सं या - डी। डी एन। 1205/ 98
ई.एस.एस.एन. 0971 8451
ं भुगतान के बिना डी.पी.एस.ओ. दिल्ली में ाक पं डाव
अनुमति। ाहभंस। ; यू। डी एन। 55

P&T Regd. No. D (DL. 1205/98
ISSN 0971-8451
Licenced under U (DN)-55
to post without pre-payment at DPSO, Delhi 54

ओमती मीनल कौर, निदेशक: प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नई दिल्ली 110001 द्वारा प्रकाशित और मुद्रित। मुद्रक: नाग मुद्रण, डी 4 सी सेक्टर,
नई दिल्ली 110032. प्रकाशन स्थान - 655, पी. टी.ओ, निर्माण भवन नई दिल्ली 110011. सम्पादक : बलदेव सिंह सहाय